मार्च, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

# उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

पी एल डी (सी. डी)-3-2019 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

# उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मार्च, 2019 अंक - 3

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2019) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

**Online selling of law Patrikas/Books is available on**
**Website ⟹ https://bharatkosh.gov.in/product/product**

---

**विक्रय कार्यालय** : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

**प्रस्तावित संपादक-मंडल**

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

**सहायक संपादक** : श्री पुण्डरीक शर्मा

**उप-संपादक** : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

**परामर्शदाता** : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

**ISSN- 2457-0478**

**कीमत : डाक-व्यय सहित**

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

**© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय**

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

# संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपने पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैंने मई, 2018 के अंक में देश की अदालतों में लम्बित मुकदमों पर चर्चा की थी और उनके शीघ्र निस्तारण के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 में संशोधन का भी सुझाव दिया था जिससे कि दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को ही मामले में मध्यस्थ बना दिया जाए और तत्पश्चात् दोनों मध्यस्थ एक तृतीय तटस्थ अधिवक्ता की नियुक्ति कर लें और इस प्रकार 3 मध्यस्थों का माध्यस्थम् अधिकरण गठित हो जाएगा । न्यायालय विवाद्यक निर्धारित करके मामले की फाइल माध्यस्थम् अधिकरण को सौंप देगा जो दोनों पक्षों के विवाद को सुनकर अपना पंचाट पारित कर देगा और तत्पश्चात् पंचाट को मामले की फाइल के साथ न्यायालय को लौटा देगा । तत्पश्चात् न्यायालय माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा पारित पंचाट के आधार पर डिक्री पारित कर देगा और पंचाट को डिक्री का भाग बना देगा ।

इसी माह माननीय उच्चतम न्यायालय ने अयोध्या स्थित श्रीराम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद वाले मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के अधीन तीन मध्यस्थों की नियुक्ति की और मध्यस्थों को निर्देश दिया कि वे मामले की सुनवाई करके अपनी रिपोर्ट (पंचाट) न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें । यहां पर इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि संसार में ऐसा कोई विवाद नहीं है जिसमें समझौते का तत्व विद्यमान न हो और ऐसा कोई विवाद नहीं है जिसमें आपसी समझबूझ से मिल-बैठकर समस्या का हल न निकाला जा सके । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा

राजनैतिक और धार्मिक रूप से अतिसंवेदनशील अयोध्या विवाद जैसे मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 का अवलंब लेते हुए मध्यस्थों की नियुक्ति किए जाने से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है ।

यदि अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित समस्त सिविल वादों में धारा 89 का अवलंब लेते हुए माध्यस्थम् अनिवार्य कर दिया जाए तो इससे **सिविल वादों के निस्तारण में** न्यायालय के समय की बचत होगी और न्यायाधीश अपने समय का सदुपयोग **दांडिक मामलों के निस्तारण में** कर सकेंगे, और पक्षों को अपने ही अधिवक्ताओं की मध्यस्थ के रूप में उपस्थिति में तीव्र गति से न्याय मिल सकेगा । माध्यस्थम् अधिकरण अपनी सुविधानुसार वाद की सुनवाई का समय और स्थान निर्धारित कर सकेगा और दोनों पक्षों की उपस्थिति में माध्यस्थम् की कार्यवाही सुनिश्चित कर सकेगा । पक्षों को बार-बार मामले की सुनवाई स्थगित होने वाली परेशानी से भी मुक्ति मिलेगी । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रक्रिया से न तो न्यायाधीशों या न्यायालयों की संख्या बढ़ानी पड़ेगी और न ही सरकारी खजाने पर अतिरिक्त बोझ पड़ेगा और साथ ही जनता को समय से न्याय भी सुलभ होगा । विधि मंत्रालय और न्यायपालिका को इस दिशा में गंभीरतापूर्वक मंत्रणा करनी चाहिए । **सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 में मामूली सा संशोधन करके इस कार्य को सुलभ बनाया जा सकता है** ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

**अविनाश शुक्ला**
संपादक

# उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मार्च, 2019

## निर्णय-सूची


| | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| अब्दुल अजीज और अन्य **बनाम** जाक़िर मोहम्मद और अन्य | 418 |
| अभिमन्यू पोरिया **बनाम** राजवीर सिंह और अन्य | 338 |
| आंध्र प्रदेश राज्य सिविल सप्लाइज कारपोरेशन लिमिटेड **बनाम** मैसर्स केसरीमल प्रमोद कुमार | 271 |
| क्विक टाइम जनरल ट्रेडिंग एल. एल. सी. **बनाम** ओनर्स एंड पार्टीज इंटरेस्टेड इन द वेसेल एम. टी. एक्वेरियस | 302 |
| दीप माला गौत्तम और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, पावर और ऊर्जा विभाग | 406 |
| बज बज कंपनी लिमिटेड **बनाम** नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड | 322 |
| रवि शंकर त्रिपाठी प्रोप्राइटरशिप फर्म (मैसर्स) बिलासपुर, छत्तीसगढ़ **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य | 333 |
| राम बहादुर **बनाम** बृज मोहन | 278 |
| शिवजी राय और अन्य **बनाम** संयुक्त निदेशक चकबंदी, मुजफ्फरपुर और अन्य | 376 |
| सोलोमन लेमकांग **बनाम** भारत संघ और अन्य | 399 |
| हेमन्त रावत **बनाम** श्रीमती अनुभा रावत | 382 |


## संसद् के अधिनियम


| | |
|---|---|
| संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ | 1 – 30 |

पृष्ठ संख्या

**उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68)**

– धारा 17 और 21 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 227] – आर्थिक अधिकारिता की कमी के आधार पर राज्य आयोग द्वारा परिवाद खारिज किया जाना – राज्य आयोग को ऐसे परिवादों पर विचार करने की आर्थिक अधिकारिता प्राप्त है, जहां माल और सेवाओं का मूल्य एक करोड़ रुपए से अधिक न हो – परिवाद के अंतर्गत किया गया दावा एक करोड़ से अधिक नहीं – राज्य आयोग द्वारा अधिकारिता के प्रयोग से इनकार किया जाना परिवाद के दावा मूल्य के त्रुटिपूर्ण निर्धारण पर आधारित है – राज्य आयोग का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

**बज बज कंपनी लिमिटेड** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** 322

**नावधिकरण (समुद्रीय दावों की अधिकारिता और निपटारा) अधिनियम, 2017 (2017 का 22)**

– धारा 5 और 4 (1)(च) – जलयान का कब्जा लिया जाना और कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ पारित आदेश का विस्तार – उच्च न्यायालय द्वारा वादी को माल की दोषपूर्ण सुपुर्दगी पर प्रतिवादी के विरुद्ध जलयान को कब्जे में लिए जाने का निर्देश – वादी का दावा वहन-पत्र पर आधारित होना जिसके द्वारा वादी को माल की सुपुर्दगी प्राप्त होना दर्शित किया जाना – वादी द्वारा जलयान के मास्टर की सूचना, जिसके द्वारा यह सूचित किया गया कि वादी को माल प्राप्त हो गया, को न्यायालय से छिपाया जाना – वादी को कोई वादकारण

पृष्ठ संख्या

उत्पन्न नहीं हुआ, अत: जलयान को कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ पारित आदेश अपास्त किया जाना न्यायोचित है ।

**क्विक टाइम जनरल ट्रेडिंग एल. एल. सी.** बनाम **ओनर्स एंड पार्टीज इंटरेस्टेड इन द वेसेल एम. टी. एक्वेरियस** 302

**ब्याज अधिनियम, 1978 (1978 का 14)**

– धारा 3(ख) – माल के प्रदाय के लिए संविदा – प्रतिवादी द्वारा वादी को संपूर्ण संदाय न किया जाना – संविदा में ब्याज के बारे में कोई उल्लेख न होना – जहां किसी संविदा में ब्याज के बारे में कोई उल्लेख नहीं है वहां मांग के बारे में सूचना जारी करने की तारीख से डिक्री जारी करने की तारीख तक ब्याज अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ।

**आंध्र प्रदेश राज्य सिविल सप्लाइज कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **मैसर्स केसरीमल प्रमोद कुमार** 271

– धारा 3(ख) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34] – ब्याज की दर – अवधारण – जहां मामले में ब्याज की विद्यमान दर के बारे में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है वहां न्यायालय विधि के अनुसार विवेक का प्रयोग करते हुए न्यायोचित और साम्यापूर्ण ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है ।

**आंध्र प्रदेश राज्य सिविल सप्लाइज कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **मैसर्स केसरीमल प्रमोद कुमार** 271

पृष्ठ संख्या

## विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 20 – विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने के बारे में न्यायालय का विवेकाधिकार और शक्ति – न्यायालय की विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने की अधिकारिता वैवेकिक है और न्यायालय ऐसा अनुतोष प्रदान करने के लिए मात्र इस कारणवश आबद्ध नहीं है कि ऐसा किया जाना विधिपूर्ण है, किंतु न्यायालय का यह विवेकाधिकार मनमाना नहीं है वरन युक्तियुक्त न्यायिक सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित तथा अपील न्यायालय द्वारा शुद्धिशक्य है ।

**राम बहादुर** बनाम **बृज मोहन** 278

– धारा 20 – विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने के बारे में न्यायालय का विवेकाधिकार और शक्ति – विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन – क्रेता द्वारा यह अभिकथित किया जाना कि उसने अचल संपत्ति क्रय किए जाने के प्रयोजनार्थ भागिक रूप से प्रतिफल का संदाय कर दिया था – शेष प्रतिफल का संदाय नहीं किया गया और संपत्ति का कब्जा भी प्राप्त नहीं हुआ – निष्पादित किए गए विक्रय करार का संपत्ति के विक्रय का करार न होकर ऋण की प्रतिभूति का करार पाया जाना – चूंकि ऋण का संदाय ब्याज सहित नहीं किया गया अत: न्यायालय द्वारा ऋण की रकम का ब्याज सहित संदाय किए जाने के प्रयोजनार्थ पारित किया गया आदेश न्यायसंगत है ।

**राम बहादुर** बनाम **बृज मोहन** 278

पृष्ठ संख्या

## संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 122 [सपठित उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1954 की धारा 40] – कृषि भूमि – दान-विलेख – चकबंदी अधिकारी द्वारा दान-विलेख की विधिमान्यता के बारे में निष्कर्ष – चकबंदी अधिकारी की शक्तियां और अधिकारिता – चकबंदी अधिकारी अथवा चकबन्दी प्राधिकारियों को किसी विलेख को शून्य घोषित करने की अधिकारिता नहीं है – ऐसी अधिकारिता केवल अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय को प्राप्त है ।

**शिवजी राय और अन्य** बनाम **संयुक्त निदेशक चकबंदी, मुजफ्फरपुर और अन्य** 376

## संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8)

– धारा 4 – शब्द और पद – 'अप्राप्तवय' और 'संरक्षक' – परिभाषा – 'अप्राप्तवय' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है – 'संरक्षक' पद से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी अप्राप्तवय या उसकी संपत्ति अथवा दोनों की देखभाल करता हो ।

**अभिमन्यू पोरिया** बनाम **राजवीर सिंह और अन्य** 338

– धारा 7, 8 और 12 [सपठित हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 4, 6, 8 और 13] – अप्राप्तवय बालिका की अभिरक्षा - माता की मृत्यु के पश्चात् बच्ची की अभिरक्षा नाना-नानी के पास होना – पिता द्वारा नैसर्गिक संरक्षक और वित्तीय

पृष्ठ संख्या

सम्पन्नता के आधार पर बच्ची की अभिरक्षा के लिए दावा – न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा बच्ची का कथन और उसकी इच्छा अभिलिखित किया जाना – बच्ची द्वारा अपने नाना-नानी और मामा के पास रहने पर बल दिया जाना – ऐसे किसी मामले में न्यायालय को नागरिकों के सहायक के रूप में कानूनी संरक्षक नियुक्त करने की अपनी विशेष अधिकारिता के प्रयोग में बालक या बालिका के कल्याण को प्राथमिक रूप में सुनिश्चित करना चाहिए – पिता को मात्र इस आधार पर कि वह बालक का नैसर्गिक संरक्षक है या उसके भरणपोषण और शिक्षा आदि के लिए अधिक सम्पन्न है, बालक की अभिरक्षा प्रदान करना उचित नहीं है – तथापि, पिता को बच्चे से मिलने के अधिकारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

**अभिमन्यू पोरिया** बनाम **राजवीर सिंह और अन्य** 338

**संविधान, 1950**

– अनुच्छेद 14 – कतिपय वस्तुओं के प्रदाय और सन्निर्माण के लिए निविदा – तकनीकी बोली और वित्तीय बोली – जहां तकनीकी बोली अन्तर्वलित हो वहां प्रथमत: तकनीकी अर्हता का निर्धारण किया जाना चाहिए – प्राधिकारी तकनीकी बोली के निर्धारण के प्रक्रम पर उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, वित्तीय बोली का निर्देश करके बोली वापस नहीं ले सकते हैं ।

**रवि शंकर त्रिपाठी प्रोप्राइटरशिप फर्म (मैसर्स) बिलासपुर, छत्तीसगढ़** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य** 333

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 16 (2) और 15 (3) – लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता और लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध – सरकारी सेवाओं में महिलाओं को आरक्षण – अनुच्छेद 16(2) लिंग के आधार पर सेवा आरक्षण को वर्जित करता है और अनुच्छेद 15(3) भी इस संबंध में कोई सहायता नहीं कर सकता चूंकि राज्य की सेवा में सभी आरक्षण केवल अनुच्छेद 16 के अधीन ही प्रदान किए जा सकते हैं ।

**दीप माला गौत्तम और एक अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, पावर और ऊर्जा विभाग** 406

– अनुच्छेद 16(2) और 15(3) – लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता और लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध – सरकारी सेवाओं में महिलाओं का आरक्षण – महिलाएं समाज की असुरक्षित भाग हैं, वे अपने सामाजिक वर्गों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अलाभकर स्थिति में हैं, अतः आरक्षण के लिए महिलाओं की नई कोटि सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ संविधान का संशोधन करके ही महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया जा सकता है ।

**दीप माला गौत्तम और एक अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, पावर और ऊर्जा विभाग** 406

– अनुच्छेद 226 [सपठित सेवा नियमों का मूल नियम 17(1)] – सीमा सुरक्षा बल में हैड कांस्टेबल के रूप में चयन – याची को सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में तकनीकी त्याग-पत्र देने के पश्चात् सातवीं

पृष्ठ संख्या

बटालियन में समायोजित किया जाना – सात मास के पश्चात् याची को पुन: सत्रहवीं बटालियन में भेजा जाना – याची की नियुक्ति 15 नवंबर, 2012 की बजाय तारीख 14 अगस्त, 2017 से संगणित की जानी – याची द्वारा नियुक्ति की तारीख को चुनौती दी जानी – ऐसा आदेश विधिविरुद्ध है अत: याची को उसकी मूल नियुक्ति की तारीख से ज्येष्ठता संबंधी फायदा तथा अन्य मीमांसात्मक फायदे तथा तारीख 14 अगस्त, 2014 से समस्त धनीय फायदे दिए जाने चाहिए ।

**सोलोमन लेमकांग** बनाम **भारत संघ और अन्य** 399

– अनुच्छेद 227 – उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति – उच्च न्यायालय को उस समस्त क्षेत्र के संबंध में, जिसमें वह अधिकारिता का प्रयोग करता है, समस्त अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों के ऊपर पर्यवेक्षण की व्यापक शक्ति प्राप्त होती है – यह शक्ति सीमित या राज्य विधान-मंडल के किसी अधिनियम द्वारा बाधित नहीं हो सकती – पर्यवेक्षणीय शक्ति उच्च न्यायालय के प्राधिकार की सीमाओं के भीतर स्थित अधिकरणों पर भी विस्तारित होती है जिनको इस बात को सुनिश्चित करना होता है कि वे विधि का पालन करें ।

**बज बज कंपनी लिमिटेड** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** 322

– अनुच्छेद 227 – उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति – अनुच्छेद 227 के अधीन प्रदत्त पर्यवेक्षण की शक्ति वैवेकिक है – इस शक्ति का प्रयोग विरल परिस्थितियों में और मात्र अधीनस्थ न्यायालयों

पृष्ठ संख्या

और अधिकरणों को उनके प्राधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए, न कि मात्र त्रुटियों की शुद्धि के प्रयोजनार्थ ।

**बज बज कंपनी लिमिटेड** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** 322

## सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 14, नियम 5 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7, नियम 11 और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 54] – जहां लिखित कथन फाइल किया जा चुका है और विवाद्यक विरचित किए जा चुके हैं और परिसीमा के विवाद्यक पर पक्षों के मध्य विवाद है और प्रतिवादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 14, नियम 5 के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र में भी परिसीमा के ही बिंदु पर विवाद है, तो न्यायालय को सर्वप्रथम आदेश 14, नियम 5 के प्रार्थना पत्र का निस्तारण करना चाहिए ।

**अब्दुल अजीज और अन्य** बनाम **जाक़िर मोहम्मद और अन्य** 418

## हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 9 और 13(1)(i-क) – पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी – पति द्वारा विरोध – पति द्वारा पत्नी और बच्चे के भरणपोषण से बचने के लिए बच्चे के पैतृत्व से इनकार – पति द्वारा पत्नी को मायके में छोड़ने के पश्चात् बच्चे के जन्म के खर्चे न उठाया जाना – पति के आचरण से यह साबित होना कि वह अपनी पत्नी और

पृष्ठ संख्या

बच्चे को अपने साथ रखने का इच्छुक नहीं था – पत्नी के हक में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री ठीक ही मंजूर की गई है ।

**हेमन्त रावत** बनाम **श्रीमती अनुभा रावत** 382

– धारा 9 और 13(1)(i-क) – दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्याथापन के लिए अर्जी – पति या पत्नी के साहचर्य से प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु – युक्तियुक्त प्रतिहेतु की अवधारणा – प्रत्येक मामला अपने-अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है इसलिए यह संभव नहीं है कि युक्तियुक्त प्रतिहेतु के लिए ऐसा कोई नि:शेष कथन किया जाए कि क्या बात 'युक्तियुक्त प्रतिहेतु' गठित करती है और क्या नहीं ।

**हेमन्त रावत** बनाम **श्रीमती अनुभा रावत** 382

– धारा 9 और 23 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ख] – पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी – पति द्वारा पत्नी से की गई बातचीत को रिकार्ड किया जाना – पति द्वारा उक्त बातचीत को अपनी प्रतिरक्षा स्वरूप पेश किया जाना – ऐसी बातचीत का अवलंब लेने के लिए अर्जीदार को यह साबित करना चाहिए कि वह वैवाहिक साहचर्य स्थापित करने के लिए और वैवाहिक अधिकारों तथा कर्तव्यों को पूरा करने के लिए सद्भाविक इच्छा रखता या रखती है ।

**हेमन्त रावत** बनाम **श्रीमती अनुभा रावत** 382

# आंध्र प्रदेश राज्य सिविल सप्लाइज कारपोरेशन लिमिटेड

बनाम

# मैसर्स केसरीमल प्रमोद कुमार

तारीख 8 मार्च, 2018

**न्यायमूर्ति डी. वी. एस. एस. सोम्याजुलू**

**ब्याज अधिनियम, 1978 (1978 का 14) – धारा 3(ख) – माल के प्रदाय के लिए संविदा – प्रतिवादी द्वारा वादी को संपूर्ण संदाय न किया जाना – संविदा में ब्याज के बारे में कोई उल्लेख न होना – जहां किसी संविदा में ब्याज के बारे में कोई उल्लेख नहीं है वहां मांग के बारे में सूचना जारी करने की तारीख से डिक्री जारी करने की तारीख तक ब्याज अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ।**

**ब्याज अधिनियम, 1978 – धारा 3(ख) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34] – ब्याज की दर – अवधारण – जहां मामले में ब्याज की विद्यमान दर के बारे में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है वहां न्यायालय विधि के अनुसार विवेक का प्रयोग करते हुए न्यायोचित और साम्यापूर्ण ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है ।**

2001 का मूल वाद सं. 1573 जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल की गई है, वादी द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध ब्याज और खर्चों के साथ धन की वसूली के लिए फाइल किया गया था । निचले न्यायालय ने वाद का विचारण किया जिसमें वादी की ओर से पी. डब्ल्यू. 1 की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-25 को चिह्नांकित किया गया । प्रतिवादियों की ओर से डी. डब्ल्यू. 1 से डी. डब्ल्यू.5 की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श बी-1 से प्रदर्श बी-15 को चिह्नांकित कराया गया । अन्ततः विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए डिक्री पारित

की कि वादी तारीख 15 जून, 2001 से डिक्री पारित किए जाने की तारीख तक ब्याज के साथ दावे के एक भाग के लिए हकदार है । निचले न्यायालय में प्रथम विवाद्यक ब्याज के प्रश्न के बारे में था । प्रतिवादी द्वारा वर्तमान अपील 2001 के मूल वाद सं. 1573 में सप्तम ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, सिटी सिविल कोर्ट, हैदराबाद द्वारा तारीख 3 नवंबर, 2003 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – इस बारे में विधि पूर्ण रूप से स्थापित है कि ब्याज के संदाय के लिए किसी संविदा के अभाव में ब्याज, ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3(ख) के अनुसार मांगा जा सकता है । विधि की यह धारा उस स्थिति का समाधान करती है जहां संविदा में ब्याज के बारे में कोई उल्लेख नहीं है । ऐसे किसी मामले में, इस विषय पर स्थापित विधि के अनुसार विधिक आज्ञा यह है कि किसी पक्षकार को ब्याज के साथ मूल धनराशि की लिखित सूचना द्वारा मांग करनी चाहिए और इसके पश्चात् न्यायालय सूचना में उल्लिखित तारीख से ब्याज मंजूर करने के लिए सशक्त है । (पैरा 7)

जहां तक ब्याज की दर का संबंध है, ब्याज अधिनियम, 1978 के उपबंधों के अनुसार विद्यमान ब्याज दरों को साबित किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में स्वीकृतत: ब्याज की विद्यमान दर को साबित करने के लिए कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं है । समय पर विचार करते हुए जो पहले ही गुजर चुका है और इस मामूली विवाद्यक का निपटान करने के लिए यह न्यायालय इन दोनों विनिश्चयों का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित करता है कि चूंकि संव्यवहार वर्ष 2000 से 2001 का वाणिज्यिक संव्यवहार है इसलिए 12 प्रतिशत ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है । इस मामले का भी यही विनिश्चय है । यह स्पष्ट किया जाता है कि ब्याज अधिनियम के अधीन ब्याज के सभी दावों के लिए ब्याज की मांग करने वाली सूचना आज्ञापक है । न्यायालय द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए विद्यमान ब्याज दरों के लिए कतिपय साक्ष्य आवश्यक है । उपर्युक्त सभी कारणों से यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित

करता है कि सूचना की तारीख से डिक्री की तारीख तक 12 प्रतिशत ब्याज अधिनिर्णीत करना और उसके पश्चात् 6 प्रतिशत की दर से ब्याज अधिनिर्णीत करना उचित है । परिणामत: अपील खारिज की जाती है और सप्तम ज्येष्ठ न्यायाधीश, सिटी सिविल न्यायालय, हैदराबाद द्वारा 2001 के मूल वाद सं. 1573 में तारीख 3 नवंबर, 2003 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है । तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस अपील में लंबित प्रकीर्ण आवेदनों को, यदि कोई हों, बंद किया जाता है । (पैरा 8, 9, 10 और 11)

**अनुसरित निर्णय**

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2002] | ए. आई. आर. 2002 आंध्र प्रदेश 441 (पूर्ण न्यायपीठ) = 2002 (4) ए. एल. टी. 525 : **ए. पी. एस. आर. टी. सी.** बनाम **डी. विजया** ; | 8 |
| [1997] | ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1324 : **बी. वी. राधा कृष्ण** बनाम **स्पंज आयरन इंडिया लिमिटेड** ; | 7 |
| [1992] | ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 732 : **सचिव, सिंचाई विभाग उड़ीसा राज्य** बनाम **जी. सी. राय** ; | 7 |
| [1985] | ए. आई. आर. 1985 आंध्र प्रदेश 21 : **श्री श्रीनिवास कंपनी** बनाम **फर्म बी. डी. एच. ए. शेट्टी** । | 8, 9 |

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2004 की सी. सी. सी. ए. सं. 197.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** श्री एस. सत्यनारायण प्रसाद और सुश्री सी. सिन्धू कुमारी

**प्रत्यर्थी की ओर से** श्री सी. वी. मोहन रेड्डी

**न्यायमूर्ति डी. वी. एस. एस. सोम्याजुलू** – प्रतिवादी द्वारा वर्तमान अपील 2001 के मूल वाद सं. 1573 में सप्तम ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, सिटी सिविल कोर्ट, हैदराबाद द्वारा तारीख 3 नवंबर, 2003 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. सुविधा के लिए पक्षकारों को वादी और प्रतिवादी के रूप में निर्दिष्ट किया गया है ।

3. 2001 का मूल वाद सं. 1573 जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल की गई है, वादी द्वारा प्रतिवादी के विरुद्ध ब्याज और खर्चों के साथ धन की वसूली के लिए फाइल किया गया था । निचले न्यायालय ने वाद का विचारण किया जिसमें वादी की ओर से पी. डब्ल्यू. 1 की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-25 को चिह्नांकित किया गया । प्रतिवादियों की ओर से डी. डब्ल्यू. 1 से डी. डब्ल्यू. 5 की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श बी-1 से प्रदर्श बी-15 को चिह्नांकित कराया गया । अन्ततः विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए डिक्री पारित की कि वादी तारीख 15 जून, 2001 से डिक्री पारित किए जाने की तारीख तक ब्याज के साथ दावे के एक भाग के लिए हकदार है । निचले न्यायालय में प्रथम विवाद्यक ब्याज के प्रश्न के बारे में था । इस विवाद्यक पर दिए गए निष्कर्ष ही इस अपील की विषयवस्तु है । वस्तुतः अन्य विवाद्यकों को न तो उठाया गया है और न ही उन पर दलीलें दी गई हैं ।

4. इस न्यायालय ने अपीलार्थी/प्रतिवादी की विद्वान् काउंसेल सुश्री सी. सिन्धू कुमारी की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. सत्यनारायण प्रसाद को तथा प्रत्यर्थी/वादी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सी. वी. मोहन रेड्डी को ब्याज अधिनिर्णीत करने के प्रश्न पर सुना ।

5. अपीलार्थी/प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय ने सूचना (नोटिस) की तारीख से डिक्री की तारीख तक ब्याज मंजूर करने में गलती की है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि अनुरोध किए गए ब्याज को अधिनिर्णीत करने के लिए कोई विधिक या तथ्यात्मक आधार मौजूद नहीं है । प्रत्यर्थी/वादी

के विद्वान् काउंसेल ने उपर्युक्त दलीलों के जवाब में यह दलील दी है कि ब्याज का अधिनिर्णय पूर्णतया विधिमान्य है और ब्याज अधिनियम, 1978 सहित देश की विधि के अनुसार है ।

6. उन तथ्यों का जो इस विवाद्यक को विनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं, संक्षेप मे उल्लेख किया जा रहा है । वादी ने प्रतिवादी को सामग्री का प्रदाय किया था जिसके लिए उसे पूरा संदाय नहीं किया गया । अत: ब्याज के साथ शेष रकम की वसूली के लिए वाद फाइल किया गया था । स्वीकृतत: पक्षकारों के बीच ब्याज के संदाय के लिए किसी व्यवस्था (विन्यास) का कोई उल्लेख नहीं है ।

7. इस बारे में विधि पूर्ण रूप से स्थापित है कि ब्याज के संदाय के लिए किसी संविदा के अभाव में ब्याज, ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3(ख) के अनुसार मांगा जा सकता है । विधि की यह धारा उस स्थिति का समाधान करती है जहां संविदा में ब्याज के बारे में कोई उल्लेख नहीं है । ऐसे किसी मामले में, इस विषय पर स्थापित विधि के अनुसार विधिक आज्ञा यह है कि किसी पक्षकार को ब्याज के साथ मूल धनराशि की लिखित सूचना द्वारा मांग करनी चाहिए और इसके पश्चात् न्यायालय सूचना में उल्लिखित तारीख से ब्याज मंजूर करने के लिए सशक्त है । वर्तमान मामले में, स्वीकृतत: तारीख 15 जून, 2001 की सूचना द्वारा ब्याज की मांग की गई थी । अत: भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **बी. वी. राधा कृष्ण** बनाम **स्पंज आयरन इंडिया लिमिटेड**[1] वाले मामले के निर्णय में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय यह महसूस करता है कि निचले न्यायालय ने तारीख 15 जून, 2001 से ब्याज अधिनिर्णीत करने में कोई गलती नहीं की है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **बी. वी. राधा कृष्ण** (उपरोक्त) वाले मामले में भी ब्याज अधिनियम, 1978 के उपबंधों पर विचार किया था । भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय की एक सांविधानिक न्यायपीठ ने **सचिव, सिंचाई विभाग उड़ीसा राज्य** बनाम **जी. सी. राय**[2] वाले मामले के विनिश्चय में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1324.

[2] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 732.

"47. (i) कोई व्यक्ति जिसे धन के उपयोग से वंचित किया गया है जिसके लिए वह वैधानिक रूप से हकदार है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा गया हो, वंचन के लिए प्रतिकर पाने का अधिकारी है । इसे ब्याज, प्रतिकर या नुकसानी कहा जा सकता है । यह आधारभूत विचारणा विवादित अवधि के लिए विधिमान्य है, जो मध्यस्थ के समक्ष लंबित है क्योंकि यह उस अवधि के लिए है जो मध्यस्थता किए जाने के लिए निर्देश करने से पूर्व की है । यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 का सिद्धांत है और मध्यस्थ के मामले में निर्धारण करने के लिए अन्य कोई कारण या सिद्धांत मौजूद नहीं हैं ।

यद्यपि विधि का यह सिद्धांत जो माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन एक मामले में प्रतिपादित किया गया है, ब्याज के सभी दावों के लिए विधिमान्य है ।"

8. जहां तक ब्याज की दर का संबंध है, ब्याज अधिनियम, 1978 के उपबंधों के अनुसार विद्यमान ब्याज दरों को साबित किया जाना चाहिए । वर्तमान मामले में स्वीकृततः ब्याज की विद्यमान दर को साबित करने के लिए कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं है । तथापि, इस न्यायालय की एक पूर्ण न्यायपीठ ने **ए. पी. एस. आर. टी. सी.** बनाम **डी. विजया**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विधि के पुनर्विलोकन के पश्चात् न्यायालय ने ऐसी दर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए विवेक का प्रयोग किया जैसाकि न्यायालय ने उचित और साम्यापूर्ण समझा विशेषतया सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 के अधीन । इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **श्री श्रीनिवास कंपनी** बनाम **फर्म बी. डी. एच. ए. शेट्टी**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि 12 प्रतिशत ब्याज अधिनिर्णीत करना युक्तियुक्त है ।

9. समय पर विचार करते हुए जो पहले ही गुजर चुका है और इस

---

[1] ए. आई. आर. 2002 आंध्र प्रदेश 441 (पूर्ण न्यायपीठ) = 2002 (4) ए. एल. टी. 525.

[2] ए. आई. आर. 1985 आंध्र प्रदेश 21.

मामूली विवाद्यक का निपटान करने के लिए यह न्यायालय इन दोनों विनिश्चयों का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित करता है कि चूंकि संव्यवहार वर्ष 2000 से 2001 का वाणिज्यिक संव्यवहार है इसलिए 12 प्रतिशत ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है । इस मामले का भी यही विनिश्चय है । यह स्पष्ट किया जाता है कि ब्याज अधिनियम के अधीन ब्याज के सभी दावों के लिए ब्याज की मांग करने वाली सूचना आज्ञापक है । न्यायालय द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए विद्यमान ब्याज दरों के लिए कतिपय साक्ष्य आवश्यक है । ब्याज दरें घटती-बढ़ती रहती हैं । अतः इसे साबित करने के लिए साक्ष्य आवश्यक है । इस निष्कर्ष के लिए **श्री श्रीनिवास कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुसरण किया जा रहा है ।

10. उपर्युक्त सभी कारणों से यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि सूचना की तारीख से डिक्री की तारीख तक 12 प्रतिशत ब्याज अधिनिर्णीत करना और उसके पश्चात् 6 प्रतिशत की दर से ब्याज अधिनिर्णीत करना उचित है ।

11. परिणामतः अपील खारिज की जाती है और सप्तम ज्येष्ठ न्यायाधीश, सिटी सिविल न्यायालय, हैदराबाद द्वारा 2001 के मूल वाद सं. 1573 में तारीख 3 नवंबर, 2003 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है । तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस अपील में लंबित प्रकीर्ण आवेदनों को, यदि कोई हों, बंद किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

महः.

(2019) 1 सि. नि. प. 278 इलाहाबाद

# राम बहादुर

बनाम

# बृज मोहन

तारीख 27 अगस्त, 2018

**न्यायमूर्ति सिद्धार्थ**

**विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 20 – विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने के बारे में न्यायालय का विवेकाधिकार और शक्ति – न्यायालय की विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने की अधिकारिता वैवेकिक है और न्यायालय ऐसा अनुतोष प्रदान करने के लिए मात्र इस कारणवश आबद्ध नहीं है कि ऐसा किया जाना विधिपूर्ण है, किंतु न्यायालय का यह विवेकाधिकार मनमाना नहीं है वरन युक्तियुक्त न्यायिक सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित तथा अपील न्यायालय द्वारा शुद्धिशक्य है ।**

**विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – धारा 20 – विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने के बारे में न्यायालय का विवेकाधिकार और शक्ति – विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन – क्रेता द्वारा यह अभिकथित किया जाना कि उसने अचल संपत्ति क्रय किए जाने के प्रयोजनार्थ भागिक रूप से प्रतिफल का संदाय कर दिया था – शेष प्रतिफल का संदाय नहीं किया गया और संपत्ति का कब्जा भी प्राप्त नहीं हुआ – निष्पादित किए गए विक्रय करार का संपत्ति के विक्रय का करार न होकर ऋण की प्रतिभूति का करार पाया जाना – चूंकि ऋण का संदाय ब्याज सहित नहीं किया गया अत: न्यायालय द्वारा ऋण की रकम का ब्याज सहित संदाय किए जाने के प्रयोजनार्थ पारित किया गया आदेश न्यायसंगत है ।**

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी परगना, तहसील और जिला मैनपुरी के मौजा जसराऊ स्थिति 0.401 हैक्टेयर क्षेत्रफल के भूमिधरी प्लाट सं. 869 का स्वामी और कब्जेदार है ; प्रतिवादी

उक्त संपत्ति में अपने आधे अंश को वादी को 18,000/- रुपए की रकम के प्रतिफलार्थ बेचने के लिए राजी हो गया और वादी ने उसको अग्रिम विक्रय प्रतिफल के रूप में 14,000/- रुपए का संदाय कर दिया और तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार निष्पादित कर दिया और उसको रजिस्ट्रीकृत भी करा दिया । तत्पश्चात् करार में दो वर्षों की अवधि शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय किए जाने के पश्चात् विक्रय विलेख के निष्पादन के प्रयोजनार्थ उपबंधित की गई थी । वादी ने प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के लिए निरंतर रूप से अनुरोध किया किंतु प्रतिवादी उसका अनदेखा करता रहा और बाद में उसने वादी के समक्ष यह शर्त रखी कि यदि वह उसकी शेष आधी संपत्ति खरीदने के लिए इच्छुक है तो वह संपूर्ण संपत्ति का विक्रय विलेख निष्पादित कर देगा । तद्नुसार, पक्षों के मध्य तारीख 28 दिसंबर, 1994 का एक अन्य रजिस्ट्रीकृत विक्रय करार निष्पादित किया गया और दोनों पक्षों के मध्य यह सहमति हुई कि विक्रय विलेख दो वर्षों के भीतर निष्पादित कर दिया जाएगा । 18,000/- रुपए के विक्रय प्रतिफल के लिए सहमति हुई थी और वादी द्वारा प्रतिवादी को 14,000/- रुपए पुन: अग्रिम विक्रय प्रतिफल के रूप में दिए गए । वादी ने प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने का अनुरोध किया, किंतु प्रतिवादी उसका अनदेखा करता रहा और अंतत: वादी ने प्रतिवादी को तारीख 4 जनवरी, 1996 की एक सूचना दी जिसके द्वारा उसने प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 16 जनवरी, 1996 को मैनपुरी के उप रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थिति होने की अपेक्षा की । प्रतिवादी ने सूचना प्राप्त होने पर विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के लिए छह माह का अतिरिक्त समय मांगा किंतु वह अपनी बात से पुन: मुकर गया । वादी ने तारीख 31 अक्तूबर, 1996 को प्रतिवादी को पुन: एक सूचना भेजी, जिसको प्रतिवादी ने वापस लौटा दिया और यह सूचना तारीख 8 नवम्बर, 1996 को वादी द्वारा वापस प्राप्त की गई । वादी ने प्रतिवादी को तारीख 18 नवंबर, 1996 की तीसरी सूचना भेजी जिसके द्वारा उसने प्रतिवादी से विक्रय विलेख तारीख 30 नवंबर, 1996 को निष्पादित

किए जाने की अपेक्षा की, किंतु प्रतिवादी ने सूचना प्राप्त करने से पुन: इनकार कर दिया । वादी विक्रय विलेख निष्पादित कराए जाने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक था और उसके पास धन भी तैयार था किंतु प्रतिवादी ने विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया और इसलिए, यह वाद संस्थित कराया गया । निर्णीत किया गया कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार ऋण के बदले में निष्पादित किया गया था और प्रतिवादी द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 1994 का विक्रय करार वादी के पक्ष में 14,000/- रुपए स्वीकार किए जाने के पश्चात् निष्पादित किया गया था ; वादी तारीख 28 दिसंबर, 1992 के करारों के मतावलंबन में विक्रय विलेखों को निष्पादित कराए जाने के प्रयोजनार्थ सदैव तैयार और इच्छुक था ; सिविल न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में निर्णीत किया गया कि वाद तारीख 28 दिसंबर, 1992 के प्रथम विक्रय करार के संबंध में समय-सीमा द्वारा बाधित नहीं है ; चूंकि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का प्रथम करार 14,000/- रुपए के ऋण, जिसका पूर्ण संदाय प्रतिवादी द्वारा वादी को नहीं किया गया, को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया था, इसलिए प्रतिवादी को वादी को दो माह के भीतर 12% प्रतिवर्ष ब्याज के साथ 14,000/- रुपए की रकम लौटाए जाने के लिए निर्देषित कर दिया और यह निष्कर्ष भी निकाला गया कि तारीख 28 दिसंबर, 1994 का विक्रय करार विधिमान्य है और इसलिए वादी के संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री का हकदार अभिनिर्धारित किया गया और वाद को प्रतिवादी को यह निर्देश देते हुए डिक्री कर दिया गया कि वह वादी के पक्ष में तारीख 28 दिसंबर, 1994 के विक्रय करार के अनुसार दो माह के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित कर दे । प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर निचले अपीली न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील फाइल की और प्रथम अपील न्यायालय ने निचले अपील न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में 12% वार्षिक ब्याज के साथ 14,000/- रुपए लौटाए जाने के संबंध में पारित विचारण न्यायालय की डिक्री को भागत: यह अभिनिर्धारित करते हुए पलट दिया गया कि यह रकम ऋण स्वरूप प्रदान की गई थी और निचले अपीली न्यायालय

द्वारा वादी का वाद तारीख 28 दिसंबर, 1992 और 28 दिसंबर, 1994 के विक्रय करारों के मतावलंबन में वादी के पक्ष में दो विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ पूर्णत: डिक्री कर दिया गया । प्रतिवादी ने प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह द्वितीय अपील फाइल की है । द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – परस्पर विरोधी पक्षों को सुने जाने और उद्धृत निर्णयज विधियों का परिशीलन किए जाने के पश्चात् यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है । वादी साक्षी 1 के कथन का परिशीलन किए जाने पर यह दर्शित होता है कि वादी ने अपने कथन में इस बात को स्वीकार किया है कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय के प्रयोजनार्थ किया गया पूर्ववर्ती करार 14,000/- रुपए, जो प्रतिवादी को अग्रिम के रूप में दिए गए थे, के ऋण को सुरक्षित किए जाने के लिए प्रतिभूति का दस्तावेज है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि उसने पूर्वोक्त करार के मतावलंबन में विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कोई सूचना कभी नहीं भेजी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्रतिवादी द्वारा 14,000/- रुपए की रकम वापस नहीं लौटाई गई थी किंतु प्रतिवादी ने उससे कभी भी विक्रय करार को लौटाने के लिए नहीं कहा । विचारण न्यायालय ने वाद में विवाद्यक सं. 1 निर्णीत करते हुए, वादी के कथन पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का प्रथम करार केवल वादी द्वारा प्रतिवादी को उधार स्वरूप दिए गए ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया था और इसलिए विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी को 14,000/- रुपए की रकम 12% ब्याज के साथ प्रतिवादी को वापस लौटाने के लिए न्यायत: निर्देशित किया । चूंकि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर तारीख 28 दिसंबर, 1994 का द्वितीय विक्रय करार विधिमान्य पाया गया, इसलिए विचारण न्यायालय ने तारीख 28 दिसंबर, 1994 के द्वितीय करार के संबंध में विक्रय संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए

फाइल किए गए वाद को न्यायत: डिक्री किया । निचले अपीली न्यायालय ने यह उपधारणा की है कि चूंकि दोनों ही करार रजिस्ट्रीकृत थे, इसलिए प्रतिवादी इस बाबत विवाद नहीं कर सकता कि प्रथम करार को विक्रय करार के रूप में निष्पादित नहीं किया गया था, बल्कि इस करार को ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ दस्तावेज के रूप में निष्पादित किया गया था । निचले अपीली न्यायालय ने अभिवचनों के परे जाकर अपने विवेक का उपयोग किया और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि पक्ष आपस में निकट रूप से संबंधित थे और इसलिए विक्रय करार के निष्पादन की कोई आवश्यकता उत्पन्न नहीं हुई थी और ऋण को मात्र सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ एक दस्तावेज निष्पादित किया गया था । उन्होंने इस निष्कर्ष को भी अभिलिखित किया है कि जब वह अपने ऋण को मात्र सुरक्षित करना चाहता था, तो प्रतिवादी द्वारा रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज द्वारा भूमि का विक्रय किए जाने के प्रयोजनार्थ करार के निष्पादन की कोई आवश्यकता नहीं थी । निचले अपीली न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि एक बार किसी दस्तावेज को विक्रय करार के रूप में निष्पादित कर दिया जाता है और उसको रजिस्ट्रीकृत कर दिया जाता है तो उस दस्तावेज को प्रतिभूति दस्तावेज के रूप में विचारित नहीं किया जा सकता । निचला अपीली न्यायालय वादी के, जिसने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उसने प्रथम करार तारीख 28 दिसंबर, 1992 को प्रतिवादी को दिए गए ऋण को सुरक्षित कराए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित कराया था, कथन पर विचार करने में विफल रहा । जब वादी ने स्वयं इस बात को स्वीकार कर लिया है कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का दस्तावेज वास्तव में प्रतिवादी द्वारा उसके पक्ष में ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया था और इस संस्वीकृति को उसके द्वारा उसके कथन में आगे भी स्पष्ट नहीं किया गया था, तो विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष न्यायत: निकाला कि वादी उसके द्वारा की गई संस्वीकृति को दृष्टि में रखते हुए इस दस्तावेज को विवादित करने से विबंधित है । उपरोक्त विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए विधि के प्रथम और तृतीय सारभूत प्रश्न

यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किए जाते हैं कि विचारण न्यायालय ने न्यायत: अभिनिर्धारित किया है कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार वास्तव में विक्रय करार नहीं था बल्कि यह वादी द्वारा प्रतिवादी को उधार स्वरूप दिए गए ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया एक दस्तावेज था । विधि के द्वितीय और सप्तम सारभूत प्रश्नों को यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया जाता है कि निचले अपीली न्यायालय द्वारा प्रदान किया गया अनुतोष अभिवचनों और याचित अनुतोषों के परे नहीं है । अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा इस संबंध में कोई दलील नहीं दी गई है । विधि के सारभूत प्रश्न सं. 4, 6 और 8 को यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया जाता है कि निचले अपीली न्यायालय ने वादी के वाद को पूर्णत: डिक्री करते हुए, वादी की संस्वीकृति का गलत ढ़ंग से अनदेखा किया है, जैसाकि भारत संघ बनाम इब्राहीमउद्दीन वाले मामले से स्पष्ट है । विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर भलीभांति विचार किया गया है और यह पाया जाता है कि उन पर निचले अपीली न्यायालय द्वारा पूर्ण रूप से विचार नहीं किया गया । विधि के सारभूत प्रश्न सं. 5 से 9 सुसंगत नहीं है और पक्षों द्वारा उनके संबंध में कोई दलील नहीं दी गई है । निचले न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं । परिणामस्वरूप, द्वितीय अपील मंजूर की जाती है । (पैरा 18, 21 और 22)

**निर्दिष्ट निर्णय**

पैरा

[2013] 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2752 :
**भारत संघ** बनाम **इब्राहीमउद्दीन और एक अन्य** ; 15

[2010] (2010) 12 एस. सी. सी. 740 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2679 :
**दिनेश कुमार** बनाम **युसूफ अली** ; 20

[2010] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2685 :
**भार्थ मथा और एक अन्य** बनाम **आर. विजय रंगनाथन और अन्य** ; 20

[2006] 2006 (3) ए. आई. आर. झारखंड आर. 285 :
**देवकीनंदन केजरीवाल** बनाम **गया प्रसाद गोंड** ; 16

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1975 :
**गुरुदेव कौल** बनाम **काकी** ; 16

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 534 :
**राघवेन्द्र कुमार** बनाम **फर्म प्रेम मशीनरी एंड कंपनी** ; 20

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1261 :
**मोलर मल** (मृतक) **द्वारा विधिक उत्तराधिकारी** बनाम **मैसर्स के आयरन वर्क्स प्रा. लि.** ; 20

[1998] (1998) 6 एस. सी. सी. 423 :
**श्रीमती सत्या गुप्ता** उर्फ **मधु गुप्ता** बनाम **बृजेश कुमार** ; 20

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2702 :
**तेज राम** बनाम **पतिराम भाऊ** ; 14

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 353 :
**श्रीमती प्रतिवा देवी** बनाम **टी. वी. कृष्णन** ; 20

[1992] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1604 :
**जगदीश सिंह** बनाम **नाथू सिंह ।** 20

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की द्वितीय अपील सं. 63.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री सत्येन्द्र नारायण सिंह और महेन्द्र नाथ पांडेय

**प्रत्यर्थी की ओर से** सर्वश्री कमलेश सिंह और अभिजीत मिश्रा

**न्यायमूर्ति सिद्धार्थ** – अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री महेन्द्र नाथ पांडेय और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री कमलेश सिंह को सुना ।

2. यह प्रतिवादी द्वारा फाइल की गई द्वितीय अपील है, जिसको मैनपुरी के सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ वर्ग) द्वारा 1996 के मूल वाद सं. 187 में पारित निर्णय और डिक्री को भागत: अपास्त करते हुए मैनपुरी के जिला न्यायाधीश श्री रमेश शंकर द्वारा पारित तारीख 21 नवंबर, 2007 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल किया गया है ।

3. वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध तारीख 28 नवंबर, 1992 और 28 दिसंबर, 1994 की दो विक्रय संविदाओं के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल किया । उसने अग्रिम में दिए गए विक्रय प्रतिफल को ब्याज सहित वापस दिलाए जाने की अनुकल्पिक प्रार्थना भी की ।

4. वादी का पक्षकथन यह है कि प्रतिवादी राम बहादुर परगना, तहसील और जिला मैनपुरी के मौजा जसराऊ स्थिति 0.401 हैक्टेयर क्षेत्रफल के भूमिधरी प्लाट सं. 869 का स्वामी और कब्जेदार है ; प्रतिवादी उक्त संपत्ति में अपने आधे अंश को वादी को 18,000/- रुपए की रकम के प्रतिफलार्थ बेचने के लिए राजी हो गया और वादी ने उसको अग्रिम विक्रय प्रतिफल के रूप में 14,000/- रुपए का संदाय कर दिया और तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार निष्पादित कर दिया और उसको रजिस्ट्रीकृत भी करा दिया ; करार में दो वर्षों की अवधि शेष विक्रय प्रतिफल का संदाय किए जाने के पश्चात् विक्रय विलेख के निष्पादन के प्रयोजनार्थ उपबंधित की गई थी ; वादी ने प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के लिए निरंतर रूप से अनुरोध किया किंतु प्रतिवादी उसका अनदेखा करता रहा और बाद में उसने वादी के समक्ष एक शर्त रखी कि यदि वह उसकी शेष आधी संपत्ति खरीदने के लिए इच्छुक है, तो वह संपूर्ण संपत्ति का विक्रय विलेख निष्पादित कर देगा ; तद्नुसार, पक्षों के मध्य तारीख 28 दिसंबर, 1994 का एक अन्य रजिस्ट्रीकृत विक्रय करार निष्पादित किया गया और दोनों पक्षों के मध्य यह सहमति हुई कि विक्रय विलेख दो वर्षों के भीतर निष्पादित कर दिया जाएगा ; 18,000/- रुपए के विक्रय प्रतिफल के लिए सहमति हुई थी और वादी द्वारा प्रतिवादी को 14,000/- रुपए पुन: अग्रिम विक्रय प्रतिफल के रूप में दिए गए ; वादी ने प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने का अनुरोध किया, किंतु प्रतिवादी उसका अनदेखा करता रहा और अंतत: वादी ने

प्रतिवादी को तारीख 4 जनवरी, 1996 की एक सूचना (नोटिस) दी जिसके द्वारा उसने प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 16 जनवरी, 1996 को मैनपुरी के उप रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थिति होने की अपेक्षा की ; प्रतिवादी ने सूचना प्राप्त होने पर विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के लिए छह माह का अतिरिक्त समय मांगा किंतु वह अपनी बात से पुन: मुकर गया ; वादी ने तारीख 31 अक्तूबर, 1996 को प्रतिवादी को पुन: एक सूचना भेजी, जिसको प्रतिवादी ने वापस लौटा दिया और यह सूचना तारीख 8 नवम्बर, 1996 को वादी द्वारा वापस प्राप्त की गई ; वादी ने तारीख 8 नवंबर, 1996 को उप रजिस्ट्रार के समक्ष अपनी उपस्थिति पहले ही दर्ज करा दी थी और उसने प्रतिवादी को तारीख 18 नवंबर, 1996 की तीसरी सूचना भेजी जिसके द्वारा उसने प्रतिवादी से विक्रय विलेख तारीख 30 नवंबर, 1996 को निष्पादित किए जाने की अपेक्षा की, किंतु प्रतिवादी ने सूचना प्राप्त करने से पुन: इनकार कर दिया ; वादी मैनपुरी के उप रजिस्ट्रार के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी ; वादी विक्रय विलेख निष्पादित कराए जाने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक था और उसके पास धन भी तैयार था किंतु प्रतिवादी ने विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया और इसलिए, यह वाद संस्थित कराया गया ।

5. प्रतिवादी ने विवादित संपत्ति के संबंध में अपने स्वामित्व और कब्जे को स्वीकार करते हुए अपना लिखित कथन फाइल किया, किंतु उसने इस बात से इनकार किया कि उसने वादी के साथ कभी कोई करार अपनी भूमि, जो उसका जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन है, के बेचे जाने के प्रयोजनार्थ किया है ; प्रतिवादी ने अभिकथित किया कि उसने वर्ष 1990 में अपनी पुत्री का विवाह किया था और उसने इस कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में ऋण लिया था ; इसी दौरान उसका पुत्र बीमार पड़ गया और उसको अपने पुत्र के इलाज पर 20,000/- रुपए व्यय करने पड़े, इसलिए वह ऋण वापस नहीं कर सका ; उसको वादी से 14,000/- रुपए का ऋण लेना पड़ा और उसने ऋण की प्रतिभूति के रूप में तारीख 28 दिसंबर, 1992 का करार निष्पादित किया ; यह सहमति हुई थी कि प्रतिवादी दो वर्षों के भीतर ऋण का संदाय कर

देगा जो उसने किया है, किंतु उसने वादी से विक्रय करार वापस प्राप्त नहीं किया ; वादी ने उसको सूचित किया कि वह विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए करार में निर्धारित समय-सीमा के पश्चात् उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता और यदि कुछ किया जाना अपेक्षित होगा तो वह करार को रद्द कर देगा ; प्रतिवादी तारीख 28 दिसंबर, 1994 को उप रजिस्ट्रार के कार्यालय में तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार को रद्द किए जाने के प्रयोजनार्थ गया था, किंतु वादी ने उससे उसकी भूमि के संबंध में तारीख 28 दिसंबर, 1994 को एक अन्य करार निष्पादित करा लिया ; वादी के पास उसकी भूमि को क्रय करने के साधन कभी भी नहीं थे और उसने विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए उसको कोई सूचना कभी भी नहीं दी थी ; वादी विक्रय विलेख को निष्पादित कराने के लिए कभी भी तैयार और इच्छुक नहीं था और उसके पास इस प्रयोजनार्थ धन भी नहीं था ; वादी का वाद तारीख 28 नवंबर, 1992 के करार से समय-सीमा द्वारा बाधित है और तारीख 28 दिसंबर, 1994 का करार कूटरचित और गढ़ा हुआ दस्तावेज है और उसके ऊपर बाध्यकारी नहीं है ; करार को कभी भी उसको पढ़कर नहीं सुनाया और समझाया गया था ; उसको मात्र यह बताया गया था कि तारीख 28 दिसंबर, 1994 को जिन दस्तावेजों को निष्पादित किया गया है वे तारीख 28 दिसंबर, 1992 को निष्पादित पूर्ववर्ती करार के रद्दकरण से संबंधित हैं ।

6. वादी ने लिखित कथन में किए गए प्रकथनों से इनकार करते हुए अपना आवेदन फाइल किया और अभिकथित किया कि उसने प्रतिवादी से कोई ऋण कभी प्राप्त नहीं किया ; दोनों ही करारों में जिन करारों का उल्लेख है, वे विक्रय करार हैं और प्रतिवादी ने वादी द्वारा संदत्त 28,000/- रुपए हड़पने के प्रयोजनार्थ झूठे अभिकथन किए हैं ; वादी ने प्रतिवादी को तीन सूचनाएं भेजी, किंतु प्रतिवादी ने उनका कोई उत्तर नहीं दिया ; वाद समय-सीमा द्वारा बाधित नहीं है और वह अभी भी विक्रय विलेखों को निष्पादित कराए जाने के प्रयोजनार्थ इच्छुक है ; उसके पास करार के समय से ही पर्याप्त राशि उपलब्ध है और आज भी उसके पास उपलब्ध है ।

7. विचारण न्यायालय द्वारा पक्षों के अभिवचनों के आधार पर आवश्यक विवाद्यक विरचित किए गए, जो निम्नलिखित हैं :-

1. क्या प्रतिवादी ने तारीख 28 दिसंबर, 1992 के करार द्वारा 18,000/- रुपए की रकम के प्रतिफल के बदले में 0.401 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले प्लाट सं. 869 के आधे भाग को बेचने का करार किया था या वादी द्वारा 14,000/- रुपए की रकम का संदाय प्रतिवादी को ऋण के रूप में किया गया था ?

2. क्या वादी ने तारीख 28 दिसंबर, 1994 को 0.401 प्लाट हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले प्लाट सं. 869 के आधे भाग के संबंध में विक्रय का करार किया था और प्रतिवादी को 14,000/- रुपए की रकम का संदाय विक्रय प्रतिफल के अग्रिम के रूप में किया था ?

3. क्या वादी तारीख 28 दिसंबर, 1992 और 28 दिसंबर, 1994 के विक्रय करार के अनुसार प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित कराने के लिए सदैव तैयार और इच्छुक था ?

4. क्या वादी को वाद संस्थित कराए जाने के प्रयोजनार्थ कोई वाद कारण उद्भूत नहीं हुआ ?

5. क्या वाद तारीख 28 दिसंबर, 1992 के विक्रय करार के संबंध में समय-सीमा द्वारा बाधित है ?

6. वादी किसी अन्य अनुतोष, यदि कोई हो, का अधिकारी है ?

8. विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 1 को यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया गया कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार ऋण के बदले में निष्पादित किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 2 यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया गया कि प्रतिवादी द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 1994 का विक्रय करार वादी के पक्ष में 14,000/- रुपए स्वीकार किए जाने के पश्चात् निष्पादित किया गया और विवाद्यक को वादी के पक्ष में निर्णीत कर दिया । विवाद्यक सं. 3 यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया गया कि वादी तारीख 28 दिसंबर, 1992 के करारों के मतावलंबन में विक्रय विलेखों को निष्पादित कराए जाने के प्रयोजनार्थ सदैव तैयार और इच्छुक था ।

न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में वाद पर विचार किए जाने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में विवाद्यक सं. 4 वादी के पक्ष में निर्णीत किया गया । विवाद्यक सं. 5 को यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया गया कि वाद तारीख 28 दिसंबर, 1992 के प्रथम विक्रय करार के संबंध में समय-सीमा द्वारा बाधित नहीं है । विवाद्यक सं. 6 यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया गया कि चूंकि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का प्रथम करार 14,000/- रुपए के ऋण, जिसका पूर्ण संदाय प्रतिवादी द्वारा वादी को संदाय नहीं किया गया, को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया था, इसलिए प्रतिवादी को वादी को दो माह के भीतर 12% प्रतिवर्ष ब्याज के साथ 14,000/- रुपए की रकम लौटाए जाने के लिए निर्देषित कर दिया गया । यह निष्कर्ष भी निकाला गया कि तारीख 28 दिसंबर, 1994 का विक्रय करार विधिमान्य है और इसलिए वादी के संविदा के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री का हकदार अभिनिर्धारित किया गया और वाद को प्रतिवादी को यह निर्देश देते हुए डिक्री कर दिया गया कि वह वादी के पक्ष में तारीख 28 दिसंबर, 1994 के विक्रय करार के अनुसार दो माह के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित कर दे ।

9. प्रतिवादी ने विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर निचले अपीली न्यायालय के समक्ष 2003 की सिविल अपील सं. 11 फाइल की और निचले अपील न्यायालय द्वारा वादी के पक्ष में 12% वार्षिक ब्याज के साथ 14,000/- रुपए लौटाए जाने के संबंध में पारित विचारण न्यायालय की डिक्री को भागत: यह अभिनिर्धारित करते हुए पलट दिया गया कि यह रकम ऋण स्वरूप प्रदान की गई थी और निचले अपीली न्यायालय द्वारा वादी का वाद तारीख 28 दिसंबर, 1992 और 28 दिसंबर, 1994 के विक्रय करारों के मतावलंबन में वादी के पक्ष में दो विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के प्रयोजनार्थ पूर्णत: डिक्री कर दिया गया ।

10. प्रतिवादी ने निचली अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह द्वितीय अपील फाइल की है । यह अपील सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 11 के अधीन फाइल

की गई है और इस न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध है ।

11. पक्षों के विद्वान् काउंसेल इस बात से सहमत हैं कि अपील को अपील ज्ञापन में विरचित विधि के समस्त सारभूत प्रश्नों, जो निम्नलिखित हैं, पर सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण किया जा सकता है और उन पर सुनवाई की जा सकती है :-

1. क्या निचले अपीली न्यायालय ने तारीख 28 दिसंबर, 1992 के करार, जो ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया करार है और इस करार को तारीख 28 दिसंबर, 1994 के करार के साथ निष्पादित विक्रय करार माना गया है, के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का अनदेखा करके विधि की दृष्टि में सारभूत त्रुटि कारित की है ?

2. क्या निचले अपीली न्यायालय याची द्वारा किए गए अभिवचनों और दावाधीन अनुतोषों के परे अनुतोष प्रदान कर सकता था ?

3. क्या निचले अपीली न्यायालय ने तारीख 28 फरवरी, 1992 और दिसंबर, 1994 के करारों को विक्रय करारों के रूप में मान्यता प्रदान करके सही कार्य किया जबकि उनको उन्हीं करारों के साक्षियों द्वारा साबित नहीं किया गया ?

4. क्या निचले न्यायालय वादी, जिसने इस बात को स्वीकार किया कि करार उस रकम, जिसको प्रतिवादी द्वारा किया गया, के आहरण की प्रतिभूति के रूप में निष्पादित किया गया था, की संस्वीकृति पर विचार करने में न्यायनुमत थे ?

5. क्या न्यायालय प्रश्नगत भूमि के मुख्य विवाद के संबंध में कोई विवाद्यक विरचित किए बिना ही उस विवाद्यक को उपधारणा के आधार पर निर्णीत कर सकता है ?

6. क्या अपीली न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा मामले में निकाले गए निष्कर्ष को पलटे बिना उपधारणा के आधार पर आगे की कार्यवाही कर सकता है ?

7. क्या निचले न्यायालय वादी द्वारा किए गए अभिवचनों और चाहे गए अनुतोषों के परे एक तृतीय पक्षकथन पर विश्वास करते हुए अनुतोष प्रदान कर सकता है ?

8. क्या निचले न्यायालय वादी द्वारा की गई संस्वीकृति और प्रतिरक्षा साक्षियों के साक्ष्य का अनदेखा करते हुए मामले में आगे की कार्यवाही करने में न्यायनुमत थे ?

9. क्या संपूर्ण प्रश्नगत भूमि, जिसको निष्पादित विक्रय करारों की विषयवस्तु के रूप में अभिकथित किया गया है, विनिर्दिष्ट अनुपालन अधिनियम के परिक्षेत्र के अंतर्गत आती है ?

12. पक्षों के विद्वान् काउंसेल ने अभिकथित किया कि वे मामले में बहस के लिए तैयार हैं और इस मामले में कोई स्थगन नहीं चाहते । चूंकि पक्षों के विद्वान् काउंसेल ने अपील में आज ही बहस के लिए अपनी इच्छा व्यक्त की है और उन्होंने इस अपील में विरचित विधि के सारभूत प्रश्नों पर बहस की तैयारी के लिए समय नहीं चाहा है, इसलिए यह न्यायालय इस अपील को सुनने के लिए अग्रसर होती है ।

13. प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अवैध हैं । विचारण न्यायालय ने केवल वादी के साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर निर्णय और डिक्री पारित किए हैं और उन्होंने प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार नहीं किया । वादी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि उसको करार की तारीख की कोई जानकारी नहीं है और न ही इस बात की जानकारी है कि उसने प्रतिवादी को विक्रय करार के निष्पादन के लिए कोई सूचना भेजी थी । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार रकम वापस लौटाए जाने के संबंध में किया गया करार है । किंतु निचले अपीली न्यायालय ने उपधारणा के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को पलट दिया और वादी द्वारा की गई संस्वीकृति का भी अनदेखा किया । विवादित भूमि प्रतिवादी की आजीविका का एकमात्र स्रोत है और इसलिए निचले न्यायालय को वाद का परीक्षण वादी के पक्ष में अंतर्निहित विवेकाधिकार

के आधार पर नहीं करना चाहिए था और वाद खारिज कर देना चाहिए था । तारीख 28 दिसंबर, 1992 और 28 दिसंबर, 1994 के विक्रय करारों में नरेश चंद्र और राम चंद्र, जो इन करारों में साक्षी भी थे, मामले के मध्यस्थ हैं । दोनों ही साक्षियों ने अभिकथित किया कि करार को उनके समक्ष नहीं पढ़ा गया और उनको करारों की अंतर्वस्तुओं की जानकारी नहीं है । विचारण न्यायालय ने मामले में अभिवचनों के परे जाकर विचार किया और तारीख 28 दिसंबर, 1992 के करार में उल्लिखित 14,000/- रुपए की रकम वापस लौटाए जाने का अनुतोष प्रदान कर दिया जबकि इस संबंध में वादपत्र में किसी अनुतोष की ईप्सा नहीं की गई थी । वादी द्वारा किसी भी प्रकार की तैयारी और तत्परता के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया, चूंकि उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में इस बात को स्वीकार किया है कि उसने प्रतिवादी को विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कोई सूचना कभी नहीं भेजी । दोनों ही विवादित करार कपट पर आधारित हैं और निचले न्यायालयों ने वादी के वाद को गलत ढ़ंग से डिक्री किया है ।

14. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि विवादित करार विक्रय करार नहीं है बल्कि ऋण प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ किए गए करार हैं । विचारण न्यायालय ने इस सीमा तक निष्कर्षों को सही अभिलिखित किया । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह स्पष्टत: साबित हो गया था कि करार के निष्पादन के पीछे वास्तविक आशय ऋण के लिए प्रतिभूति उपलब्ध कराया जाना था । दस्तावेज का स्वरूप उसके निष्पादन के पीछे के वास्तविक आशय पर अध्यारोही प्रभाव नहीं रख सकता, जिसको वादी द्वारा अपने कथन में स्वीकार किया गया है । उन्होंने **तेज राम** बनाम **पतिराम भाऊ**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है और इस निर्णय के पैरा 4 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जो इस प्रकार है :-

> "4. परस्पर विरोधी दलीलों को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न विचारणार्थ उद्भूत होता है कि क्या प्रत्यर्थी ने विक्रय संव्यवहार के बाबत 48,000/- रुपए के प्रतिफल का संदाय नकद में किया है ?

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2702.

यह देखा गया है कि आशयित दस्तावेज विक्रय का करार होने के कारण वास्तव में विक्रय करार नहीं था, साक्षी सं. 2, जो इस करार का लेखक था, ने अपनी मुख्य परीक्षा में स्वीकार किया है कि उसने इस प्रकार के अनेक दस्तावेज निष्पादित किए हैं । वे सभी दस्तावेज अर्थात् 10 में से 8 दस्तावेज विनिर्दिष्ट पालन से संबंधित थे, वे सभी दस्तावेज ऐसे संव्यवहारों से संबंधित दस्तावेज हैं जिनमें प्रत्यर्थियों से ऋण लिया गया है । यह स्वीकृत स्थिति है कि प्रत्यर्थी एक महाजन है । इन परिस्थितियों के अंतर्गत दस्तावेज जो विक्रय करार के रूप में आशयित है, वास्तव में विक्रय करार नहीं है, यह प्रत्यर्थी द्वारा लिए गए ऋण पर असंदत्त ब्याज के बाबत है । यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि अपीलार्थी ने 1,500/- रुपए की राशि का एक ऋण 1965 में लिया था और उसने 3,500/- रुपए का पुनर्संदाय किया । श्री देशपांडेय ने कहा कि 15,000/- रुपए की राशि तथ्यात्मक रूप से सही राशि नहीं है, यह वास्तव में मात्र 1,500/- रुपए है । यही सत्यता के विक्रय संव्यवहार है और प्रत्यर्थी कारोबारी होने के कारण और उसके द्वारा 48,000/- रुपए का संदाय आशयित किए जाने के कारण कोई भी व्यक्ति यह प्रत्याशा करेगा कि वह कब्जे की ईप्सा करेगा या वह केवल अधिशेष प्रतिफल का संदाय करेगा और विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए अनुरोध करेगा । इसके बजाय वह पूरे तीन वर्ष तक शांत रहा । कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के मध्य किसी राशि का संव्यवहार हुआ था और प्रत्यर्थी महाजन होने के नाते ऋण लेने वालों से दस्तावेज विक्रय करार के रूप में प्राप्त कर रहा था । उसके द्वारा यह अनुध्यात किए जाने पर कि ऋण लेने वालों द्वारा ऋण की रकम का ब्याज समेत संदाय में विफल रहने की स्थिति में निष्पादित किए गए दस्तावेज ऋण और उस पर उपार्जित ब्याज के पुनर्संदाय को प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रयोग किए जाएंगे, इस बात की संभाव्यता नहीं है कि महाजन होने के नाते और 48,000/- रुपए की रकम का संदाय नकद में किए जाने के बाद भी वह संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने

या 2,000/- रुपए की रकम के पुनर्संदाय के मामले में शांत बैठा रहेगा और बाद में विनिर्दिष्ट पालन की ईप्सा करेगा, ऐसा सामान्य परिस्थितियों में होने की संभाव्यता नहीं होती कि वह सूचना जारी करने में तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करेगा और तत्पश्चात् अंतिम दिन वाद फाइल करेगा । निचले न्यायालयों ने इन परिस्थितियों में यह निष्कर्ष न्यायत: निकाला कि यह करार विक्रय करार नहीं है या वास्तव में विक्रय के लिए आशयित नहीं है बल्कि प्रत्यर्थी द्वारा इस पृष्ठांकन के माध्यम से की गई संस्वीकृति को दृष्टि में रखते हुए कि उसने 48,000/- रुपए प्राप्त किए थे और विनिर्दिष्ट परिस्थितियों के अभाव में और दोनों पक्षों के संदेहास्पद आचरण को ध्यान में रखते हुए हमारे लिए किसी संतोषप्रद निष्कर्ष पर इस साक्ष्य के आधार पर पहुंचना संभव नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा वास्तव में प्रत्यर्थी को क्या रकम देय थी और क्या रकम अभी भी संदेय है । इन परस्थितियों के अंतर्गत हमारी यह सुविचारित राय है कि न्याय के उद्देश्य तभी पूरे होंगे यदि उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी द्वारा 48,000/- रुपए की राशि का संदाय अपीलार्थी को किया गया था, की पुष्टि हो जाती है । तथापि, प्रत्यर्थी किसी ब्याज या लागत के संदाय का हकदार नहीं है, जैसाकि उच्च न्यायालय द्वारा आदेशित किया गया है । इन परिस्थितियों के अंतर्गत उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा 65,280/- रुपए के संदाय के लिए पारित किया गया आदेश अपास्त किया जाता है । इसके बजाए बिना किसी ब्याज के 48,000/- रुपए की एकमुश्त राशि की डिक्री पारित की जाती है ।"

15. **भारत संघ** बनाम **इब्राहीमउद्दीन और एक अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया गया । उन्होंने अपनी दलीलों को जारी रखते हुए कि संस्वीकृति साक्ष्य का सर्वोत्तम भाग होती है जिसका अवलंब दूसरा पक्ष भी ले सकता है, पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 20 और 21 का अवलंब लिया, जो निम्नलिखित हैं :–

---

[1] 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2752.

"20. संस्वीकृति सारभूत साक्ष्य का सर्वोत्तम भाग होती है जिसका अवलंब विपक्षी भी ले सकता है, यद्यपि वह निश्चायक नहीं होती, किंतु वह मामले की विनिश्चायक होती है, जब तक कि उसको सफलतापूर्वक वापस न ले लिया जाए या गलत साबित न कर दिया जाए । कतिपय परिस्थितियों में की गई संस्वीकृतियां विबंधन के रूप में क्रियान्वित होती हैं । वह प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है, यह है कि किसी संस्वीकृति को कितना महत्व दिया जाना चाहिए और इस प्रयोजनार्थ क्या यह आवश्यक है कि इस बात का पता लगाया जाए कि क्या वह साक्ष्य का स्पष्ट, असंदिग्ध और सुसंगत भाग है और पुन: उसको साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के अनुसार साबित किया गया है । यह उचित होगा कि वह व्यक्ति जिसकी प्रतिपरीक्षा की जानी है, को अवसर प्रदान किया जाए कि वह अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर सके और संस्वीकृति के प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सके । [देखें : नारायण भगवंत राव गोसावी, बाला जी वाले **बनाम** गोपाल विनायक गोसावी और अन्य, ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 100, बसंत सिंह **बनाम** जनकी सिंह और अन्य, ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 341, सीता राम भाऊ पाटिल **बनाम** रामचंद्र नागो पाटिल, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1712, सुशील कुमार **बनाम** राकेश कुमार, ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 230, यूनाईटेड इंडियन इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड **बनाम** समीर चंद चौधरी, (2005) 5 एस. सी. सी. 784 = 2005 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5195, चरंजीत लाल मेहरा और अन्य **बनाम** कमल सरोज महाजन और एक अन्य, ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2765 और उधम सिंह **बनाम** राम सिंह और एक अन्य, (2007) 15 एस. सी. सी. 529]

21. नागुबाई अम्माल और अन्य **बनाम** बी. शमाराव और अन्य ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 593 वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी पक्ष द्वारा की गई संस्वीकृति ग्रहण किए जाने योग्य होती है और वह सर्वोत्तम साक्ष्य होती है, जब तक कि यह साबित न कर दिया जाए कि इस साक्ष्य

को किसी गलत विश्वास के अंतर्गत ग्रहण किया गया है । उक्त मामले को निर्णीत करते हुए स्लैट्री **बनाम** पुले (1840) 6 एम. एंड डब्ल्यू. 664 वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया जिसमें यह मताभिव्यक्ति की गई है कि कोई पक्ष जिस बात को सत्य के रूप में स्वयं स्वीकार करता है, के बारे में युक्तिसंगत रूप से यह अवधारणा की जा सकती है कि वह सत्य है ।"

16. वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय सही तर्कण पर आधारित हैं और इन दोनों ही निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा किसी भी मध्यक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने **गुरुदेव कौल** बनाम **काकी**[1] वाले मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 14 से 60 का अवलंब लिया है । अपनी इस दलील के समर्थन में कि द्वितीय अपील में तथ्य के प्रश्नों के संबंध में निकाले गए निष्कर्षों में कोई मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता और इसलिए निचले अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में इस न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए कोई मध्यक्षेप नहीं किया जा सकता । उन्होंने **देवकीनंदन केजरीवाल** बनाम **गया प्रसाद गोंड**[2] वाले मामले में झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया है और उन्होंने इस निर्णय के पैरा 6 को निर्दिष्ट किया जो निम्नलिखित है :-

"6. निचले न्यायालयों ने अपने निर्णयों और डिक्रियों में अभिनिर्धारित किया है कि संविदा का पालन, विक्रय विलेख का निष्पादन और करार में निर्दिष्ट किया गया समय उक्त करार का मर्म भाग नहीं है । अभिलेख पर प्रदर्श 2(ए) में यह उल्लिखित है कि प्रतिवादियों के पिता ने तारीख 6 दिसंबर, 1989 को एक हजार रुपए का अतिरिक्त भुगतान प्राप्त किया था । उक्त कथन एक विधिक कार्यवाही में भूमि सुधार उपकलेक्टर के समक्ष बिहार भूमि

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1975.

[2] 2006 (3) ए. आई. आर. झारखंड आर. 285.

सुधार अधिनियम की धारा 4 (ज) के अधीन (प्रदर्श 3) किया गया था, जिससे भी यह दर्शित होता है कि संविदा के पालन और तारीख 20 जनवरी, 1994 के विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कोई अवधि विहित नहीं की गई थी और विक्रय विलेख तारीख 1 मार्च, 1994 को या उसके पूर्व निष्पादित किया जाना अपेक्षित था । इस बात को भी साबित किया गया है कि प्रतिवादी - अपीलार्थी सं. 1 ने पक्षों के मध्य स्थिरीकृत 91,000/- हजार रुपए के कुल प्रतिफल के बदले में अग्रिम राशि के रूप में 20,000/- रुपए की राशि प्राप्त की थी । प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वादी-प्रत्यर्थी के अधिकार को विफल करने का प्रयास करते हुए अपनी सगी बहन के पक्ष में वाद संस्थित करने के पश्चात् तारीख 15 फरवरी, 1994 को विक्रय-विलेख निष्पादित कर दिया, जिसको 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 द्वारा अनुध्यात विचाराधीन वाद (Lis Pendence) के सिद्धांत के अभिवाक् के आधार पर अपास्त कर दिया गया । इस बाबत तथ्यों के शुद्ध निष्कर्ष उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर संहिता की धारा 100 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में इस न्यायालय का मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं है । वास्तव में विधि का कोई भी प्रश्न उठाया नहीं गया है ।"

17. अंतत: **रुपेन्दर सिंह** बनाम **सज्जन सिंह** उर्फ **बलबीर सिंह**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया । विद्वान् काउंसेल द्वारा उक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 का अवलंब लिया जो निम्नलिखित है :–

"4. विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् मेरी यह सुविचारित राय है कि दोनों न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में कोई मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं है । इस बाबत सुस्पष्ट निष्कर्ष निकाले गए हैं कि प्रतिवादी-अपीलार्थी सं. 1 ने तारीख 20 जनवरी, 1994 का विक्रय करार निष्पादित किया है और विक्रय विलेख तारीख 1 मार्च, 1994 को या उसके पूर्व निष्पादित किया जाना अपेक्षा था । यह बात भी साबित हो चुकी है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी

[1] 2005 ला स्यूज पंजाब और हरियाणा 402.

सं. 1 ने पक्षों के मध्य तयसुदा 91,000/- रुपए के पूर्ण प्रतिफल की अग्रिम राशि के रूप में 20,000/- रुपए प्राप्त कर लिए थे । प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वादी-प्रत्यर्थी के अधिकारों को विफल करने का प्रयास करते हुए तारीख 15 फरवरी, 1994 का विक्रय विलेख वाद संस्थित किए जाने के पश्चात् अपनी सगी बहनों के पक्ष में निष्पादित कर दिया था, जो 1882 के संपत्ति अधिकरण अधिनियम की धारा 52 द्वारा अनुध्यात 'विचाराधीन वाद' के सिद्धांत के अभिवाक् के आधार पर अपास्त किया जा चुका है । इस बाबत तथ्यों के शुद्ध निष्कर्ष निकाले जा चुके हैं जिनमें इस न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 100 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मध्यक्षेप अपेक्षित नहीं है । वास्तव में विधि का कोई भी प्रश्न नहीं उठाया गया है ।"

18. परस्पर विरोधी पक्षों को सुने जाने और उद्धृत निर्णयज विधियों का परिशीलन किए जाने के पश्चात् यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के सही मूल्यांकन पर आधारित है । वादी साक्षी-1 के कथन का परिशीलन किए जाने पर यह दर्शित होता है कि वादी ने अपने कथन में इस बात को स्वीकार किया है कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय के प्रयोजनार्थ किया गया पूर्ववर्ती करार 14,000/- रुपए, जो प्रतिवादी को अग्रिम के रूप में दिए गए थे, के ऋण को सुरक्षित किए जाने के लिए प्रतिभूति का दस्तावेज है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया है कि उसने पूर्वोक्त करार के मतावलंबन में विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कोई सूचना कभी नहीं भेजी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्रतिवादी द्वारा 14,000/- रुपए की रकम वापस नहीं लौटाई गई थी किंतु प्रतिवादी ने उससे कभी भी विक्रय करार को लौटाने के लिए नहीं कहा । विचारण न्यायालय ने वाद में विवाद्यक सं. 1 निर्णीत करते हुए, वादी के कथन पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का प्रथम करार केवल वादी द्वारा प्रतिवादी को उधार स्वरूप दिए गए ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया था और

इसलिए विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी को 14,000/- रुपए की रकम 12% ब्याज के साथ प्रतिवादी को वापस लौटाने के लिए न्यायत: निर्देशित किया । चूंकि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर तारीख 28 दिसंबर, 1994 का द्वितीय विक्रय करार विधिमान्य पाया गया, इसलिए विचारण न्यायालय ने तारीख 28 दिसंबर, 1994 के द्वितीय करार के संबंध में विक्रय संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल किए गए वाद को न्यायत: डिक्री किया । निचले अपीली न्यायालय ने यह उपधारणा की है कि चूंकि दोनों ही करार रजिष्ट्रीकृत थे, इसलिए प्रतिवादी इस बाबत विवाद नहीं कर सकता कि प्रथम करार को विक्रय करार के रूप में निष्पादित नहीं किया गया था, बल्कि इस करार को ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ दस्तावेज के रूप में निष्पादित किया गया था । निचले अपीली न्यायालय ने अभिवचनों के परे जाकर अपने विवेक का उपयोग किया और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि पक्ष आपस में निकट रूप से संबंधित थे और इसलिए विक्रय करार के निष्पादन की कोई आवश्यकता उत्पन्न नहीं हुई थी और ऋण को मात्र सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ एक दस्तावेज निष्पादित किया गया था । उन्होंने इस निष्कर्ष को भी अभिलिखित किया है कि जब वह अपने ऋण को मात्र सुरक्षित करना चाहता था, तो प्रतिवादी द्वारा रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज द्वारा भूमि का विक्रय किए जाने के प्रयोजनार्थ करार के निष्पादन की कोई आवश्यकता नहीं थी । निचले अपीली न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि एक बार किसी दस्तावेज को विक्रय करार के रूप में निष्पादित कर दिया जाता है और उसको रजिस्ट्रीकृत कर दिया जाता है तो उस दस्तावेज को प्रतिभूति दस्तावेज के रूप में विचारित नहीं किया जा सकता । निचला अपीली न्यायालय वादी के, जिसने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उसने प्रथम करार तारीख 28 दिसंबर, 1992 को प्रतिवादी को दिए गए ऋण को सुरक्षित कराए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित कराया था, कथन पर विचार करने में विफल रहा । जब वादी ने स्वयं इस बात को स्वीकार कर लिया है कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का दस्तावेज वास्तव में प्रतिवादी द्वारा उसके पक्ष

में ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया था और इस संस्वीकृति को उसके द्वारा उसके कथन में आगे भी स्पष्ट नहीं किया गया था, तो विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष न्यायत: निकाला कि वादी उसके द्वारा की गई संस्वीकृति को दृष्टि में रखते हुए इस दस्तावेज को विवादित करने से विबंधित है ।

19. प्रतिवादी-अपीलार्थी के काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में **तेज राम** (उपरोक्त) और **भारत संघ** (उपरोक्त) वाले मामलों में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का जो अवलंब लिया है, उनको पूर्णतया दुरुस्त पाया जाता है ।

20. वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा **गुरुदेव कौर** (उपरोक्त), **देवकीनंदन केजरीवाल** (उपरोक्त) और **रुपिन्दर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में लिया गया अवलंब संहिता की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील की परिधि के संबंध में स्थिरीकृत विधिक प्रतिपादना के संबंध में है । तथापि, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि द्वितीय अपील में तथ्य के प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है, परंतु यह तब जबकि उच्च न्यायालय इस बाबत संतुष्ट है कि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्य पर विचार न किए जाने के कारण दूषित हैं या अभिलिखित मामले और निष्कर्षों पर त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाए जाने के कारण तर्क विरुद्ध है [देखें : **जगदीश सिंह** बनाम **नाथू सिंह**[1], **श्रीमती प्रतिवा देवी** बनाम **टी. वी. कृष्णन**[2], **श्रीमती सत्या गुप्ता** उर्फ **मधु गुप्ता** बनाम **बृजेश कुमार**[3], **राघवेन्द्र कुमार** बनाम **फर्म प्रेम मशीनरी एंड कंपनी**[4], **मोलर मल (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी** बनाम **मैसर्स के वर्क्स आयरन प्रा. लि.**[5], **भार्थ मथा और एक अन्य** बनाम **आर. विजय रंगनाथन और**

---

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1604.

[2] (1996) 5 एस. सी. सी. 353.

[3] (1998) 6 एस. सी. सी. 423.

[4] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 534.

[5] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1261.

**अन्य**[1] और **दिनेश कुमार** बनाम **युसूफ अली**[2]] ।

21. उपरोक्त विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए विधि के प्रथम और तृतीय सारभूत प्रश्न यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किए जाते हैं कि विचारण न्यायालय ने न्यायत: अभिनिर्धारित किया है कि तारीख 28 दिसंबर, 1992 का विक्रय करार वास्तव में विक्रय करार नहीं था बल्कि यह वादी द्वारा प्रतिवादी को उधार स्वरूप दिए गए ऋण को सुरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ निष्पादित किया गया एक दस्तावेज था । विधि के द्वितीय और सप्तम सारभूत प्रश्नों को यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया जाता है कि निचले अपीली न्यायालय द्वारा प्रदान किया गया अनुतोष अभिवचनों और चाहे गए अनुतोषों के परे नहीं है । अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा इस संबंध में कोई दलील नहीं दी गई है । विधि के सारभूत प्रश्न सं. 4, 6 और 8 को यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्णीत किया जाता है कि निचले अपीली न्यायालय ने वादी के वाद को पूर्णत: डिक्री करते हुए, वादी की संस्वीकृति का गलत ढंग से अनदेखा किया है, जैसाकि **भारत संघ** बनाम **इब्राहीमउद्दीन** (उपरोक्त) वाले मामले से स्पष्ट है । विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर भलीभांति विचार किया गया है और यह पाया जाता है कि उन पर निचले अपीली न्यायालय द्वारा पूर्ण रूप से विचार नहीं किया गया । विधि के सारभूत प्रश्न सं. 5 से 9 सुसंगत नहीं है और पक्षों द्वारा उनके संबंध में कोई दलील नहीं दी गई है । निचले न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं ।

22. परिणामस्वरूप, द्वितीय अपील मंजूर की जाती है ।

23. मामले के लागत की बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा ।

अपील मंजूर की गई ।

अवि.

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2685.

[2] (2010) 12 एस. सी. सी. 740 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 2679.

(2019) 1 सि. नि. प. 302 कलकत्ता

# क्विक टाइम जनरल ट्रेडिंग एल. एल. सी.

बनाम

# ओनर्स एंड पार्टीज इंटरेस्टेड इन द वेसेल एम. टी. एक्वेरियस

तारीख 21 अगस्त, 2018

**न्यायमूर्ति आशीष कुमार चक्रवर्ती**

**नावधिकरण (समुद्रीय दावों की अधिकारिता और निपटारा) अधिनियम, 2017 (2017 का 22) – धारा 5 और 4 (1)(च) – जलयान का कब्जा लिया जाना और कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ पारित आदेश का विस्तार – उच्च न्यायालय द्वारा वादी को माल की दोषपूर्ण सुपुर्दगी पर प्रतिवादी के विरुद्ध जलयान को कब्जे में लिए जाने का निर्देश – वादी का दावा वहन-पत्र पर आधारित होना जिसके द्वारा वादी को माल की सुपुर्दगी प्राप्त होना दर्शित किया जाना – वादी द्वारा जलयान के मास्टर की सूचना, जिसके द्वारा यह सूचित किया गया कि वादी को माल प्राप्त हो गया, को न्यायालय से छिपाया जाना – वादी को कोई वादकारण उत्पन्न नहीं हुआ, अत: जलयान को कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ पारित आदेश अपास्त किया जाना न्यायोचित है ।**

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि वादी ने तारीख 10 अगस्त, 2018 को नावधिकरण संबंधी वाद फाइल किया और अन्य बातों के साथ 15,2051,702.60 संयुक्त अरब अमीरात दिरहम, जो 28,06,31,328 भारतीय रुपए के समतुल्य है, की डिक्री के लिए दावा किया । वादी ने इस वाद में एक आवेदन भी फाइल किया, जो कि प्रतिवादी जलयान एम. टी. एक्वेरियस को कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ शपथपत्र द्वारा समर्थित था और जिसके द्वारा प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने की प्रार्थना की गई थी । वादी ने वादपत्र और साथ ही कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथपत्र में यह पक्षकथन किया कि वह तारीख 17 जून, 2017 को मोबीन इंटरनेशनल लिमिटेड नामक कंपनी के साथ विक्रय और क्रय संविदा में प्रविष्ट हुआ था जिसके अधीन मोबीन इंटरनेशनल ने वादी को गैस ऑयल के 18,000

एम.टी.एस. बेचे थे । वादी ने मोबीन इंटरनेशनल को 13,070,408.00 संयुक्त अरब अमीरात दिरहम के संदाय के पश्चात् उक्त माल के स्वामित्व का दावा किया है । वादी ने यह दावा भी किया है कि उसने उक्त क्रय के पश्चात् फकीश ज्वैलरी, जो संयुक्त अरब अमीरात स्थित अबूधाबी का स्थापन है, के साथ उक्त माल के विक्रय की अन्योन्य संविदा निष्पादित कर दी और उक्त माल की आपूर्ति यमन में किए जाने का वचन दिया । वादी के अनुसार मोबीन इंटरनेशनल को तारीख 21 जून, 2017 को तारीख 17 जून, 2017 की उक्त विक्रय और क्रय संविदा के अंतर्गत वादी द्वारा खरीदे गए माल को जहाज पर लादे जाने और यमन स्थित मुकल्ला पत्तन पर उसकी सुपुर्दगी दिए जाने के लिए प्रतिवादी जलयान एवरग्रीन शिपिंग लिमिटेड के स्वामियों के साथ एक सेवा प्रदाता संविदा में प्रविष्ट हुआ । अतः, मोबीन इंटरनेशनल ने प्रतिवादी जलयान को संयुक्त अरब अमीरात स्थित खोर फक्कन के पत्तन से यमन स्थित मुकल्ला पत्तन तक माल की ढुलाई के लिए नामित कर दिया । वादी का दावा है कि उक्त माल को संयुक्त अरब अमीरात स्थित खोर फक्कन के पत्तन से प्रतिवादी जलयान पर जून, 2017 के अंत में लादा गया था, इस जलयान के मास्टर, जिन्होंने इस जलयान और उसके स्वामी का प्रतिनिधित्व किया है, वहन-पत्र जारी किया, जिस पर यद्यपि तारीख 29 जून, 2017 अंकित थी, परंतु उसको तारीख 6 जुलाई, 2017 को या उसके आस-पास प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा हस्ताक्षरित और मुहरबंद किया गया था । वादी ने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र की तीन मूल प्रतियों का प्रकटीकरण किया है । तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र का गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में प्रकटीकरण किया गया है, जिसमें वादी को नौभार परेषक के रूप में नामित किया गया है और निवेश करने वाले की ओर से दिगत एंजाज हैड्रामाउंट को 'परेषिती' के रूप में नामित किया गया है और माल की सुपुर्दगी के लिए पत्तन के स्थान पर यमन स्थित मुकल्ला पत्तन का उल्लेख किया गया है । वादी के अनुसार तारीख 8 जुलाई, 2017 को भेजे गए प्रश्न में विक्रेता मोबीन इंटरनेशनल ने एक ई-मेल संदेश भेजा जिसको प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा प्राप्त किया गया और उन्होंने यह पुष्टि की कि जलयान

खोर फक्कन के पत्तन से रवाना हो गया था और माल की सुपुर्दगी के पत्तन के रास्ते में था, जैसाकि अनुदेशित किया गया था । यहां तक कि तारीख 11 जुलाई, 2017 और 12 जुलाई, 2017 को प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने संबद्ध पक्षों को सूचित कर दिया था कि जलयान मुकल्ला पत्तन के अपने रास्ते में था । फिर भी वादी को तारीख 14 जुलाई, 2017 को प्रथम बार यह ज्ञात हुआ कि प्रतिवादी जलयान हमरियाह पत्तन की ओर जाने के लिए अपना रास्ता बदल रहा है । वादी ने तारीख 14 जुलाई, 2017 की ई-मेल द्वारा तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र की एक प्रति प्रतिवादी जलयान के मास्टर को यह दावा करते हुए भेजी कि जलयान पर लदे हुए माल पर उसका स्वामित्व है और अपेक्षा की कि जलयान यमन के मुकल्ला पत्तन के अपने रास्ते से विचलित न हो । वादी ने उक्त ई-मेल द्वारा विधिक कार्यवाही आरंभ किए जाने के पूर्व प्रतिवादी जलयान के मास्टर को प्रथम अनुस्मरण/शालीन चेतावनी जारी की । उक्त ई-मेल की प्रतियों का प्रकटीकरण गिरफ्तारी के शपथपत्र में किया गया है । वादी का दावा है कि अंतत: प्रतिवादी जलयान ने माल वाहन की संविदा का भंग कारित किया, जैसाकि उनको जारी किए गए उक्त वहन-पत्र द्वारा स्पष्ट है और तारीख 25 जुलाई, 2017 को या उसके आस-पास जलयान ने माल की सुपुर्दगी संयुक्त अरब अमीरात के हमरियाह पत्तन पर कर दी । यह दावा किया गया है कि प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने माल की सुपुर्दगी किसी अज्ञात पक्ष को दे दी थी जिसके साथ वादी का किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं था । अत:, वादी ने दावा किया है कि उसको प्रतिवादी जलयान द्वारा उक्त माल की दोषपूर्ण सुपुर्दगी के कारण 13,270,408 संयुक्त अरब अमीरात दिरहम का नुकसान बर्दाश्त करना पड़ा । वादी ने प्रतिवादी जलयान द्वारा हमरियाह पत्तन पर उक्त माल की दोषपूर्ण सुपुर्दगी के कारण बर्दाश्त की गई हानि के आधार पर प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध विधि की दृष्टि में समुद्री दावा फाइल किए जाने का दावा किया है, जो उनको विधिसम्मत रूप से प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने, उसके विरुद्ध दंडादेश पारित किए जाने और उसका विक्रय किए जाने का हकदार बनाता है । वादी ने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र के आधार पर इस न्यायालय की

नावधिकरण वाद अधिकारिता के भीतर हल्दिया पत्तन पर खड़े हुए प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ नावधिकरण वाद और 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2260 फाइल किया है । इसके अतिरिक्त फार ईस्ट मरीन सर्विस हांगकांग लिमिटेड द्वारा 2018 का आवेदन जी. ए. सं. 2303 भी फाइल किया गया, जिसके माध्यम से उक्त कंपनी ने दावा किया कि वह 'एम. टी. एक्वेरियस' नामक जलयान का अनावृत्त नाव चार्टड सेवा प्रदाता है । इस कंपनी ने प्रार्थना की है कि वादी द्वारा फाइल किए गए 2018 के आवेदन जी. ए. सं. 2260 पर इस न्यायालय द्वारा पारित तारीख 10 अगस्त, 2018 के आदेश का प्रभाव समाप्त कर दिया जाए । उक्त आदेश द्वारा इस न्यायालय ने मार्शल को निर्देशित किया था कि वह जलयान 'एम. टी. एक्वेरियस' जो वर्तमान में हल्दिया पत्तन पर खड़ा है, को कब्जे में ले लिया जाए । तथापि, उपरोक्त वाद के वादी ने 2018 के आवेदन जी. ए. सं. 2260 पर बल दिया और तारीख 10 अगस्त, 2018 के उपरोक्त आदेश के प्रभाव को विस्तारित किए जाने की प्रार्थना की । अत:, दोनों ही आवेदनों को सुना गया । फार ईस्ट मरीन सर्विस हांगकांग लिमिटेड द्वारा फाइल किए गए 2018 का आवेदन जी. ए. सं. 2303 को मंजूर करते हुए और वादी द्वारा फाइल किए गए 2018 के आवेदन जी. ए. सं. 2260 को खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और साथ ही वादी और आवेदक द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया । इस बात पर विचार करते हुए कि तारीख 5 जून, 2015 के आवेदक और जलयान के स्वामी अर्थात् एवरग्रीन शिपिंग लिमिटेड के मध्य निष्पादित का सेवा प्रदाता करार और इस आवेदन में प्रकट किए गए अन्य दस्तावेजों पर विचार करते हुए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि प्रतिवादी जलयान का अनावृत्त सेवा प्रदाता आवेदक है और इस प्रकार, वही प्रतिवादी जलयान में हितबद्ध व्यक्ति है । हमारे समक्ष प्रस्तुत नौवहन वाद में वादी का वादकारण तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र पर आधारित है, जिसको अभिकथित रूप से प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा जारी किया गया था । वादी ने वादपत्र और साथ ही गिरफ्तारी के प्रयोजनार्थ फाइल किए

गए शपथपत्र में प्रतिवादी जलयान के मास्टर को संबोधित तारीख 14 जुलाई, 2017 की उसकी ई-मेल को जारी किए जाने का प्रकथन प्रतिवादी जलयान पर तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र के आधार पर लदे हुए माल पर अपने अधिकार का दावा करते हुए तारीख 14 जुलाई, 2017 की वादी की ई-मेल के उत्तर में प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा तारीख 16 जुलाई, 2017 का ई-मेल जारी किए जाने के तथ्य को वादी द्वारा विवादित नहीं किया गया है । वादी के अनुसार तारीख 16 जुलाई, 2017 की उपरोक्त ई-मेल का प्रकटन किए जाने में उसके द्वारा की गई चूक का यह अर्थ नहीं है कि उसने किसी तात्विक तथ्य को छुपाया है । तारीख 16 जुलाई, 2017 की उपरोक्त ई-मेल में प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में कहा था कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के उपरोक्त वहन-पत्र को जारी नहीं किया था और उन तथ्यों का भी उल्लेख किया, जिनके संबंध में उसको तारीख 29 जून, 2017 के उपरोक्त वहन-पत्र को जारी करने का कोई कारण उद्भूत नहीं हुआ था । वादी ने तारीख 16 जुलाई, 2017 के उपरोक्त ई-मेल, जिसके द्वारा प्रतिवादी जलयान के मास्टर के उस प्रकथन को विवादित किया गया है कि उसमें तारीख 29 जून, 2017 के उपरोक्त वहन-पत्र को जारी नहीं किया था, का कोई उत्तर नहीं दिया है । अतः, इस मामले में जो एकमात्र निष्कर्ष निकाला जाना शेष है, यह है कि वादी ने प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा किए गए इस कथन को स्वीकार कर लिया है कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र को जारी नहीं किया था । यह एकमात्र कारण हो सकता है जिसके लिए वादी ने प्रतिवादी जलयान के मास्टर के तारीख 16 जुलाई, 2017 के उपरोक्त ई-मेल का प्रकटीकरण नहीं किया है और उसके द्वारा की गई इस प्रकार की चूक तात्विक तथ्यों को छुपाए जाने की कोटि के अंतर्गत नहीं आती । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वादी का प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध कोई वाद कारण उत्पन्न नहीं हुआ । वादी ने तारीख 10 अगस्त, 2018 का उपरोक्त आदेश प्रतिवादी जलयान को गिरफ्तार किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय से

तात्विक तथ्यों को छुपाते हुए अभिप्राप्त किया था । मैं मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, आवेदक की इस दलील में सार पाता हूं कि वादी ने शारजाह की आरंभिक न्यायालय और अपीली न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां फाइल की थीं और उसके द्वारा फाइल किए गए वादपत्र और वादी को गिरफ्तार किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथपत्र पर आदेश पारित किए गए थे, के तथ्य का प्रकटीकरण न किए जाने के द्वारा इस न्यायालय से तात्विक तथ्यों को छुपाया है । वादी द्वारा पूर्वोक्त कारणोंवश फाइल किया गया आवेदन, जो 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2260 है, खारिज किया जाता है और तारीख 10 अगस्त, 2018 का गिरफ्तारी का आदेश 10,00,000/- रुपए (दस लाख रुपए) की निर्धारित लागत, जिसका संदाय वादी द्वारा आवेदक को आज की तारीख से दो सप्ताह के भीतर किया जाएगा, के साथ प्रभावशून्य किया जाता है । इसमें चूक होने पर आवेदक वादी से लागत की रकम विधि अनुसार वसूल कर सकेगा । आवेदक वादी से लागत और प्रतिवादी जलयान को दोषपूर्ण ढंग से कब्जे में लिए जाने के कारण बर्दाश्त किए गए नुकसान को वसूल करने का भी हकदार होगा । मार्शल को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश के क्रियान्वित किए जाने योग्य भाग को प्रतिवादी जलयान के मास्टर, कोलकाता पत्तन न्यास के प्राधिकारियों, सीमाशुल्क प्राधिकारियों को और प्रतिवादी जलयान को तुरंत निर्मुक्त किए जाने के प्रयोजनार्थ अन्य संबद्ध प्राधिकारियों को तुरंत संसूचित करें । उपरोक्त निर्देशों के साथ 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2303 मंजूर किया जाता है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

**निर्दिष्ट निर्णय**

पैरा

[2017] 2017 एस. सी. सी. ऑनलाइन 1104 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5530 : **क्रिसोमर कारपोरेशन** बनाम **एम. जे. आर. स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड** । 11

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 2260.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

**याची की ओर से** सर्वश्री रंजन बचावत (वरिष्ठ अधिवक्ता) सायंतन बसु, सरोसिज सेनगुप्ता, देवदत्ता राहा और पवन महेश्वरी

**प्रत्यर्थियों की ओर से** श्री रोतनन्को बनर्जी (वरिष्ठ अधिवक्ता), स्वतरूप बनर्जी और सुभोजित रॉय

**निर्णय**

फार ईस्ट मरीन सर्विस हांगकांग लिमिटेड (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'आवेदक' कह कर निर्दिष्ट किया गया है), एक कंपनी जो हांगकांग स्थित शन क्वोंग कमिर्शिलय बिल्डिंग, 8-वोएक्स रोड, पश्चिम, हांगकांग से अपने कारबार का संचालन कर रही है द्वारा 2018 का आवेदन जी. ए. सं. 2303 फाइल किया गया, जिसके माध्यम से उक्त कंपनी ने दावा किया कि वह 'एम. टी. एक्वेरियस' नामक जलयान का अनावृत्त नाव चार्टड सेवा प्रदाता है । आवेदक ने प्रार्थना की है कि वादी द्वारा फाइल किए गए 2018 के आवेदन जी. ए. सं. 2260 पर इस न्यायालय द्वारा पारित तारीख 10 अगस्त, 2018 के आदेश का प्रभाव समाप्त कर दिया जाए । उक्त आदेश द्वारा इस न्यायालय ने मार्शल को निर्देशित किया था कि वह जलयान 'एम. टी. एक्वेरियस' (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'प्रतिवादी जलयान' कह कर निर्दिष्ट किया गया है), जो वर्तमान में हल्दिया पत्तन पर खड़ा है, को कब्जे में ले लिया जाए । तथापि, उपरोक्त वाद के वादी ने 2018 के आवेदन जी. ए. सं. 2260 पर बल दिया और तारीख 10 अगस्त, 2018 के उपरोक्त आदेश के प्रभाव को विस्तारित किए जाने की प्रार्थना की । अतः, दोनों ही आवेदनों पर सुना गया ।

2. 2018 के सामान्य आवेदन सं. 2303 के तथ्य यह हैं कि वादी ने तारीख 10 अगस्त, 2018 को नावधिकरण संबंधी वाद फाइल किया और अन्य बातों के साथ 15,20,51,702.60 संयुक्त अरब अमीरात दिरहम, जो 28,06,31,328 भारतीय रुपए के समतुल्य है, की डिक्री के

लिए दावा किया । वादी ने इस वाद में एक आवेदन भी फाइल किया, जो कि प्रतिवादी जलयान एम. टी. एक्वेटियस को कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथपत्र द्वारा समर्थित है और जिसके द्वारा प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने की प्रार्थना की गई ।

3. वादी ने वादपत्र में और साथ ही कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथपत्र में यह पक्षकथन किया है कि वह तारीख 17 जून, 2017 को मोबीन इंटरनेशनल लिमिटेड, एक कंपनी जो संयुक्त अरब अमीरात में दुबई स्थित 2403, अहमद अब्देररहीम अल अतर ट्रेड सेंटर से कारबार का संचालन करती है, के साथ विक्रय और क्रय संविदा में प्रविष्ट हुआ था, जिसके अधीन मोबीन इंटरनेशनल ने वादी को गैस ऑयल (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'उक्त माल' कह कर निर्दिष्ट किया गया है) के 18,000 एम.टी.एस. बेचे थे । वादी ने मोबीन इंटरनेशनल को 13,070,408.00 संयुक्त अरब अमीरात दिरहम के संदाय के पश्चात् उक्त माल के स्वामित्व का दावा किया है । वादी ने यह दावा भी किया है कि उसने उक्त क्रय के पश्चात् फकीश ज्वैलरी, जो संयुक्त अरब अमीरात स्थित अबूधाबी का स्थापन है (जिसका इस संव्यवहार में प्रतिनिधित्व उसके वित्तदाता अर्थात् 'दिगत एनजाज हद्रामाउंट फार इनवेस्टमेंट' द्वारा किया गया) के साथ उक्त माल के विक्रय की अन्योन संविदा निष्पादित कर दी और उक्त माल की आपूर्ति यमन में किए जाने का वचन दिया । वादी के अनुसार मोबीन इंटरनेशनल को तारीख 21 जून, 2017 को तारीख 17 जून, 2017 की उक्त विक्रय और क्रय संविदा के अंतर्गत वादी द्वारा खरीदे गए माल को जहाज पर लादे जाने और यमन स्थित मुकल्ला के पत्तन पर उसकी सुपुर्दगी दिए जाने के लिए प्रतिवादी जलयान एवरग्रीन शिपिंग लिमिटेड के स्वामियों के साथ एक चार्टर (नौभाटक) संविदा में प्रविष्ट हुआ । अतः, मोबीन इंटरनेशनल ने प्रतिवादी जलयान को संयुक्त अरब अमीरात स्थित खोर फक्कम के पत्तन से यमन स्थित मुकल्ला पत्तन तक माल की ढुलाई के लिए नामित कर दिया था । वादी का दावा है कि उक्त माल को संयुक्त अरब अमीरात स्थित खोर पक्कम के पत्तन से प्रतिवादी जलयान पर जून, 2017 के अंत में लादा गया था, इस जलयान के मास्टर, जिन्होंने इस

जलयान और उसके स्वामी का प्रतिनिधित्व किया है, वहन-पत्र सं. एम.ओ.बी./क्यू.टी./001/19/06/17 जारी किया, जिस पर यद्यपि तारीख 29 जून, 2017 अंकित थी, परंतु उसको तारीख 6 जुलाई, 2017 को या उसके आस-पास प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा हस्ताक्षरित और मुहरबंद किया गया था । वादी ने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र (जिसको इसमें इसके पश्चात् तारीख 29 जून, 2017 का 'उक्त वहन-पत्र' कह कर निर्दिष्ट किया गया है) की तीन मूल प्रतियों का प्रकटीकरण किया है । तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र का गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में प्रकटीकरण किया गया है, जिसमें वादी को नौभार परेषक के रूप में नामित किया गया है और निवेश करने वाले की ओर से दिगत एंजाज हैड्रामाउंट को 'परेषिती' के रूप में नामित किया गया है और माल की सुपुर्दगी के लिए पत्तन के स्थान पर यमन स्थित मुकल्ला पत्तन का उल्लेख किया गया है । वादी के अनुसार तारीख 8 जुलाई, 2017 को भेजे गए प्रश्न में विक्रेता मोबीन इंटरनेशनल ने एक ई-मेल संदेश भेजा जिसको प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा प्राप्त किया गया और उन्होंने यह पुष्टि की कि जलयान खोर फक्कन के पत्तन से रवाना हो गया था और माल की सुपुर्दगी के पत्तन के रास्ते में था, जैसाकि अनुदेशित किया गया था । यहां तक कि तारीख 11 जुलाई, 2017 और 12 जुलाई, 2017 को प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने संबद्ध पक्षों को सूचित कर दिया था कि जलयान मुकल्ला पत्तन के अपने रास्ते में था । फिर भी वादी ने तारीख 14 जुलाई, 2017 को प्रथम बार यह ज्ञात हुआ कि प्रतिवादी जलयान हमरियाह पत्तन की ओर जाने के लिए अपना रास्ता बदल रहा है । वादी ने तारीख 14 जुलाई, 2017 की ई-मेल द्वारा तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र की एक प्रति प्रतिवादी जलयान के मास्टर को यह दावा करते हुए भेजी कि जलयान पर लदे हुए माल के ऊपर उसका स्वामित्व है और अपेक्षा की कि जलयान यमन के मुकल्ला पत्तन के अपने रास्ते से विचलित न हो । वादी ने उक्त ई-मेल द्वारा विधिक कार्यवाही आरंभ किए जाने के पूर्व प्रतिवादी जलयान के मास्टर को प्रथम अनुस्मरण/शालीन चेतावनी जारी की । उक्त ई-मेल की प्रतियों का

प्रकटीकरण गिफ्तारी के शपथपत्र में किया गया है । वादी का दावा है कि अंतत: प्रतिवादी जलयान ने माल वाहन की संविदा का भंग कारित किया, जैसाकि उनको जारी किए गए उक्त वहन-पत्र द्वारा स्पष्ट है और तारीख 25 जुलाई, 2017 को या उसके आस-पास जलयान ने माल की सुपुर्दगी संयुक्त अरब अमीरात के हमरियाह पत्तन पर कर दी । यह दावा किया गया है कि प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने माल की सुपुर्दगी किसी अज्ञात पक्ष को दे दी थी जिसके साथ वादी का किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं था । अत:, वादी ने दावा किया है कि उसको प्रतिवादी जलयान द्वारा उक्त माल की दोषपूर्ण सुपुर्दगी के कारण 13,270,408 संयुक्त अरब अमीरात दिरहम का नुकसान बर्दाश्त करना पड़ा । वादी ने प्रतिवादी जलयान द्वारा हमरियाह पत्तन पर उक्त माल की दोषपूर्ण सुपुर्दगी के कारण बर्दाश्त की गई हानि के आधार पर प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध विधि की दृष्टि में समुद्री दावा फाइल किए जाने का दावा किया है, जो उनको विधिसम्मत रूप से प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने, उसके विरुद्ध दंडादेश पारित किए जाने और उसका विक्रय किए जाने का हकदार बनाता है । वादी ने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र के आधार पर इस न्यायालय की नावधिकरण वाद अधिकारिता के भीतर हल्दिया पत्तन पर खड़े हुए प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने के प्रयोजनार्थ नावधिकरण वाद और 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2260 फाइल किया है ।

4. वादी द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2018 को 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2260 बिना दुसरे पक्ष को सूचित किए हुए प्रस्तुत किया । वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने वादी द्वारा अपने वादपत्र में किए गए पक्षकथन और ऊपरवर्णित गिरफ्तारी के शपथपत्र के आधार पर इस न्यायालय के समक्ष निवेदन किया कि वादी का प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध 2017 के दंडादेश (नावधिकरण दावों की अधिकारिता और निपटारा) अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् '2017 का अधिनियम' कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 4(1)(च) के अधीन दावा विद्यमान है और प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने के आवदेन पर बल दिया ।

5. इस न्यायालय ने वादपत्र और गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में किए गए प्रकथनों और वादी द्वारा प्रकट किए गए दस्तावेजों पर विचारोपरांत तारीख 10 अगस्त, 2018 को आदेश पारित किया जिसके द्वारा मार्शल को निर्देशित किया कि वे प्रतिवादी जलयान को तुरंत कब्जे में ले ले । साथ ही इस न्यायालय ने उक्त आदेश द्वारा यह निर्देश भी दिया कि यदि प्रतिवादी इस न्यायालय के मूल पक्ष के रजिस्ट्रार के पास प्रतिभूति के रूप में 206,06,31,328.00 रुपए की रकम जमा कर देता है, तो प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने वाला आदेश स्वत: प्रभावशून्य हो जाएगा । इस आवेदन पर जारी की गई सूचना को तारीख 13 अगस्त, 2018 तक न्यायालय की फाइल पर वापस प्राप्त हो जाना था । जैसाकि इस न्यायालय द्वारा निर्देशित किया गया, इस न्यायालय के मार्शल ने तारीख 10 अगस्त, 2018 को ही प्रतिवादी जलयान को कब्जे में ले लिया और प्रतिवादी जलयान के मास्टर पर गिरफ्तारी के आदेश को तामील कर दिया । तथापि, न्यायालय की फाइल पर सूचना वापस प्राप्त होने की तारीख पर प्रतिवादी जलयान की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ और तत्पश्चात् प्रतिवादी जलयान को इस न्यायालय के समक्ष तारीख 14 अगस्त, 2018 को उपस्थित होने के लिए निर्देशित किया गया । तारीख 14 अगस्त, 2017 को एक विद्वान् अधिवक्ता इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने निवेदन किया कि उनको प्रतिवादी जलयान के स्वामियों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष उनका पक्ष प्रस्तुत करने के लिए अनुदेशित किया गया है । यद्यपि उन्होंने कोई वकालतनामा फाइल नहीं किया किंतु फिर भी उक्त अधिवक्ता के कहने पर मामले को तारीख 17 अगस्त, 2018 तक के लिए स्थगित कर दिया गया । तारीख 17 अगस्त, 2018 का वर्तमान सामान्य आवेदन सं. 2303 फाइल किया गया ।

6. जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, हमारे समक्ष उपस्थित आवेदक, जिसने स्वयं को प्रतिवादी जलयान का अनावृत्त नाव चार्टर सेवा प्रदाता होने का दावा किया है, ने इस न्यायालय द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2018 को पारित प्रतिवादी जलयान को कब्जे में लिए जाने वाले

आदेश को प्रभावशून्य किए जाने की प्रार्थना की है । आवेदक ने सेवा प्रदाता पक्ष के समक्ष यह प्रकटीकरण किया है कि वह तारीख 5 जून, 2015 को एवरग्रीन शिपिंग लिमिटेड के जलयान के स्वामी के साथ संविदा में प्रविष्ट हुआ था, जिसके बाबत यह दावा किया जा रहा है कि वह अभी भी विधिमान्य है । उक्त सेवा प्रदाता पक्ष के अनुसार आवेदक को प्रतिवादी जलयान का सेवा प्रदाता पांच वर्ष की अवधि तक अर्थात् तारीख 5 जून, 2015 तक बना रहना था और उनको यह विकल्प उपलब्ध था कि वे तृतीय वर्ष और चतुर्थ वर्ष के लिए भी उक्त जलयान की सेवाओं को क्रय कर सकें । आवेदक को उक्त सेवा प्रदाता पक्ष को प्रतिवादी जलयान को क्रियान्वित करने और उसको चलाने के प्रयोजनार्थ बीमा प्रभारों और अनुशंगिक प्रभारों और साथ ही प्रतिवादी जलयान के रखरखाव और क्रियान्वयन के प्रयोजनार्थ समस्त खर्चों का संदाय भी करना था । उक्त जलयान के मास्टर, अधिकारी और समस्त नाविकगण भी समस्त प्रयोजनों के लिए आवेदक के कर्मचारी बने रहेंगे । उक्त सेवा प्रदाता पक्ष के अनुसार आवेदक को अनावृत्त नाव चार्टर सेवा प्रदाता के रूप में जलयान स्वामियों द्वारा उपगत किसी भी ऐसी हानि या नुकसान या खर्चों की क्षतिपूर्ति भी करनी थी, जो सेवा प्रदाता द्वारा जलयान के क्रियान्वयन के संबंध में स्वामियों के समक्ष उत्पन्न हो सकती थी और यदि जलयान को कब्जे में लिया जाता है या आवेदक द्वारा उसके क्रियान्वयन से उत्पन्न किसी कारण या दावा या भार के कारणवश निरोधित किया जाता है, तो उसको समस्त युक्तिसंगत कार्यवाई करनी होगी ताकि जलयान की निर्मुक्ति, उसकी जमानत की संभावनाओं को सम्मिलित करते हुए, युक्तिसंगत समय के भीतर सुनिश्चित की जा सके । यहां तक कि चार्टर की अवधि के दौरान जलयान का यांत्रिक प्रबंधन भी आवेदक सेवा प्रदाता का दायित्व होगा और आवेदक हांगकांग स्थित फार ईस्ट शिप मैनेजमेंट हांगकांग लिमिटेड की नियुक्ति जलयान के समस्त यांत्रिक प्रबंध के दायित्व का निर्वाह के लिए करेगा । आवेदक ने उक्त सेवा प्रदाता पक्ष द्वारा तारीख 5 जून, 2015 को की गई संविदा के आधार पर दावा किया है कि वह प्रतिवादी जलयान के संबंध में वादी द्वारा फाइल किए गए वर्तमान वाद की प्रतिरक्षा करने के लिए और

तारीख 10 अगस्त, 2018 के उक्त आदेश को प्रभावशून्य किए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश को अभिप्राप्त किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन को फाइल करने के लिए हितबद्ध व्यक्ति है ।

7. आवेदक ने तारीख 10 अगस्त, 2018 के आदेश को प्रभावशून्य किए जाने की प्रार्थना की, जिसके द्वारा प्रतिवादी जलयान को मुख्य रूप से तीन आधारों पर कब्जे में लिए जाने के लिए निर्देशित किया गया था । प्रथमत:, आवेदक की दलील यह है कि तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र, जिसका प्रकटीकरण वादी द्वारा गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में किया गया है, का आधार वर्तमान मामले को फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ दर्शित वाद-कारण में भी लिया गया है, को प्रतिवादी जलयान के मास्टर कैप्टन मुहम्मद इमरान भट्टी द्वारा जारी नहीं किया गया था और यह एक बनाया गया कूटरचित दस्तावेज है । आवेदक के अनुसार विभिन्न दस्तावेजों, जिनका प्रकटीकरण वादी द्वारा गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए अपने शपथपत्र में किया गया और साथ ही इस आवेदन में भी किया गया, से यह स्पष्ट है कि मास्टर, जो माह जून और जुलाई, 2017 के दौरान प्रतिवादी जलयान का नियंत्रण संभाल रहा था, मुहम्मद इमरान भट्टी था और न कि श्री मुहम्मद इमरान भट्टी, जैसाकि वादी द्वारा प्रकट किए गए तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र से स्पष्ट है । आवेदक ने आगे यह निवेदन किया कि गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में प्रकट किए गए शारजाह की सरकार द्वारा जारी किए गए पत्तन अनापत्ति प्रमाण-पत्र से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी जलयान तारीख 3 जुलाई, 2017 को खोर फक्कन के पत्तन पर पहुंच गया था और उस पत्तन से तारीख 5 जुलाई, 2017 को रवाना हुआ था । आवेदक ने यह दलील दी कि किसी जलयान का मास्टर किसी नौभार परेषक के पक्ष में वहन-पत्र केवल तब जारी कर सकता है जब माल को जलयान पर लाद दिया जाए, अन्यथा नहीं । इसलिए, जब प्रतिवादी जलयान तारीख 3 जुलाई, 2017 को खोर फक्कन के पत्तन पर पहुंचा, तो प्रतिवादी जलयान के मास्टर को ऐसा कोई अवसर उत्पन्न नहीं हुआ कि वह वादी के पक्ष में तारीख 29 जून, 2017 को वहन-पत्र जारी कर सकता ।

8. आवेदक ने तारीख 14 जुलाई, 2017 की एक ई-मेल का अवलंब लिया, जिसके द्वारा वादी की गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए अपने शपथपत्र में प्रकटीकरण किया है कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र की प्रति प्रतिवादी जलयान के मास्टर को अग्रेषित कर दी थी और प्रतिवादी जलयान पर लदे हुए माल के स्वत्व/स्वामित्व का दावा किया । आवेदक ने वादी को प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा जारी किए गए तारीख 16 जुलाई, 2017 के एक ई-मेल को निर्दिष्ट करते हुए अपने वर्तमान आवेदन में प्रकटीकरण किया कि आवेदक इस बात का दृढ़तापूर्वक विरोध करता है कि प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने स्पष्टतया अभिकथित किया था कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र को जारी नहीं किया था । प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने वादी को संबोधित उक्त ई-मेल में तथ्यों के कथनों को इस बाबत निर्दिष्ट किया कि जलयान से तारीख 30 जून, 2017 को हमरियाह पत्तन पर माल उतारा जा चुका था और तारीख 7 जुलाई, 2017 को खोर फक्कन के पत्तन पर नया माल लादा गया था और इस प्रकार उसके लिए यह संभव नहीं था कि वह तारीख 29 जून, 2017 को उक्त वहन-पत्र को जारी कर सकता । जलयान के मास्टर ने तारीख 16 जुलाई, 2017 के उक्त ई-मेल के साथ वादी को समस्त संगत दस्तावेज भी अग्रेषित किए । आवेदक ने इन तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए दलील दी कि इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि तारीख 29 जून, 2017 का वहन-पत्र, जिसका अवलंब वादी द्वारा लिया गया है, एक बनाया गया कूटरचित दस्तावेज है । आवेदक ने तारीख 5 जुलाई, 2017 के एक अन्य वहन-पत्र का भी अवलंब लिया, जिसको प्रतिवादी जलयान के मास्टर मोहम्मद इमरान भट्टी द्वारा सिल्क रोड प्रेट्रोलियम एफ. जेड. ई. के पक्ष में स्वयं को नौभार परेषक के रूप में वर्णित करते हुए जारी किया गया था । तारीख 5 जुलाई, 2017 के उक्त वहन-पत्र में माल लादे जाने का पत्तन संयुक्त अरब अमीरात स्थित खोर फक्कन पत्तन को उल्लिखित किया गया है और माल की सुपुर्दगी का पत्तन यमन स्थित मुकल्ला नामक पत्तन को दर्शित किया गया है । आवेदक के अनुसार उक्त मोबीन इंटरनेशनल ने स्वीकृत रूप से प्रतिवादी जलयान का चार्टर 30 से 90 दिनों की अवधि के लिए अभिप्राप्त किया था ।

सिल्क रोड पेट्रोलियम एफ. जेड. ई. ने उक्त माल को मोबीन इंटरनेशनल को विक्रय करने की संविदा की थी और इसके बदले में मोबीन इंटरनेशनल वादी के साथ तारीख 17 जून, 2017 की उक्त विक्रय और क्रय संविदा में प्रविष्ट हुआ था । चूंकि मोबीन इंटरनेशनल ने सिल्क रोड प्रेट्रोलियम एफ. जेड. ई. को प्रतिफल की संपूर्ण रकम का संदाय नहीं किया था, उक्त माल का स्वत्व मोबीन इंटरनेशनल के पक्ष में अंतरित नहीं हुआ था और इसलिए तारीख 5 जुलाई, 2017 के उक्त वहन-पत्र में इस बात का उल्लेख किया गया था कि परेषिति को 'सिल्क रोड पेट्रोलियम एफ. जेड. ई. के आदेशानुसार' संदाय करना था और यहां तक कि सिल्क रोड प्रेट्रोलियम एफ. जेड. ई. को 'अधिसूचित पक्ष' के रूप में भी उल्लिखित किया गया था । आवेदक ने निवेदन किया कि यद्यपि प्रतिवादी जलयान यमन स्थित मुकल्ला पत्तन पर माल की सुपुर्दगी के लिए संयुक्त अरब अमीरात स्थित खोर फक्कन पत्तन से रवाना हो गया है, किंतु मोबीन इंटरनेशनल और सिल्क रोड प्रेट्रोलियम एफ. जेड. ई. के मध्य विवाद हो गया है, प्रतिवादी जलयान ने अपना मार्ग परिवर्तित कर दिया है और वह हमरियाह पत्तन वापस लौट आया है और उसने माल को पत्तन पर उतार दिया है । आवेदक ने प्रकथन किया है कि चूंकि प्रतिवादी जलयान को मोबीन इंटरनेशनल द्वारा नामित किया गया था किंतु प्रतिवादी जलयान ने उक्त माल की सुपुर्दगी तारीख 17 जून, 2017 की विक्रय और क्रय संविदा के खंड 27 के निबंधनों के अनुसार मुकल्ला के पत्तन पर नहीं की, अत: वादी ने मोबीन इंटरनेशनल के विरुद्ध शारजाह के सक्षम न्यायालय के समक्ष विधिक कार्यवाही फाइल की और उन टैंकरों की कुर्की का आदेश प्राप्त कर लिया, जिनमें आवेदक के अनुसार हमरियाह पत्तन पर प्रतिवादी जलयान द्वारा सुपुर्द किया गया माल समाविष्ट था । तत्पश्चात्, सिल्क रोड प्रेट्रोलियम एफ. जेड. ई. ने उक्त विधिक कार्यवाही में मध्यक्षेप किया और शारजाह न्यायालय के समक्ष कुर्की के उक्त आदेश को प्रभावशून्य किए जाने के प्रयोजनार्थ एक आवेदन फाइल किया । तारीख 25 फरवरी, 2018 को शारजाह के आरंभिक न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए उक्त विनिश्चय की अंग्रेजी में अनुवादित एक प्रति भी प्राप्त हुई, जिसका प्रकटीकरण आदेश को प्रभावशून्य किए जाने के प्रयोजनार्थ

फाइल किए गए आवेदन में किया गया । आवेदक का निवेदन है कि तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र, जिसका और अन्य दस्तावेजों का अवलंब वादी द्वारा लिया गया, के आधार पर शारजाह के आरंभिक न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि वह माल जिसको वादी द्वारा कुर्क कराया गया, वादी से संबंधित नहीं है और वास्तव में वह माल सिल्क रोड प्रेट्रोलियम एफ. जेड. ई. से संबंधित है जिसने उस माल को तारीख 4 जुलाई, 2017 को नेशनल ईरानियन ऑयल कंपनी से क्रय किया था । वादी ने उक्त विनिश्चय को दो अपीलें फाइल किए जाने के द्वारा शारजाह के संघीय अपीली न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, जिनको अस्वीकृत कर दिया गया ।

9. आवेदक द्वारा प्रकथन किया गया द्वितीय आधार यह है कि वादी ने वाद में फाइल किए वादपत्र में और साथ ही गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में इस तथ्य को छुपाया है कि उसने मोबीन इंटरनेशनल के विरुद्ध शारजाह के न्यायालय के समक्ष उक्त विधिक कार्यवाही फाइल की है और शारजाह के आरंभिक न्यायालय और अपीली न्यायालय द्वारा उपरोक्त विनिश्चय पारित किए गए हैं । आवेदक ने तात्विक तथ्यों को छिपाए जाने के द्वितीय आधार के समर्थन में आगे प्रकथन किया है कि न तो वादपत्र में और न ही गिरफ्तारी के समर्थन में फाइल किए गए शपथपत्र में वादी द्वारा इस बाबत कोई फुसफुसाहट भी है कि उसने जलयान के मास्टर द्वारा जारी की गई तारीख 16 जुलाई, 2017 की ई-मेल प्राप्त की थी और उसने इस बात को स्पष्टतया अभिकथित किया है कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के उक्त वहन-पत्र को जारी नहीं किया था ।

10. आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया तृतीय आधार यह है कि प्रतिवादी जलयान के संबंध में मोबीन इंटरनेशनल द्वारा प्राप्त की जा रही सेवा प्रदाता स्वीकृत रूप से अत्यधिक पहले व्यतीत हो चुकी थी और वादी ने शारजाह न्यायालय के समक्ष उक्त कार्यवाही को प्रतिवादी यान के सेवा प्रदाता के रूप में फाइल नहीं किया, बल्कि तारीख 17 जून, 2017 के विक्रय और क्रय संविदा के अधीन विक्रेता के रूप में फाइल किया । किसी भी परिस्थिति में जब मोबीन इंटरनेशनल प्रतिवादी

जलयान का सेवा प्रदाता नहीं रह गया है, इसलिए वादी का कोई भी दावा, जो यमन स्थित मुकल्ला पत्तन पर उक्त माल की सुपुर्दगी किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रतिवादी जलयान के सेवा प्रदाता मोबीन इंटरनेशनल द्वारा विफलता या इनकार किए जाने के कारण उद्भूत होता है, के कारण 2017 के अधिनियम के अंतर्गत प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध कोई समुद्री दावा न तो उद्भूत होता है और न ही उद्भूत हो सकता है । आवेदक ने इन सभी आधारों पर दलीलें देते हुए तारीख 10 अगस्त, 2018 के गिरफ्तारी आदेश को प्रभावशून्य किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन पर दृढ़तापूर्वक बल दिया ।

11. इसके विपरीत, वादी ने आवेदक द्वारा की गई प्रार्थना का विरोध करते हुए दलील दी कि आवेदक को इस न्यायालय द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2018 को पारित आदेश के प्रभाव को समाप्त करने के लिए आवेदन फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है । वादी के अनुसार प्रतिवादी जलयान का स्वामी एवरग्रीन शिपिंग लिमिटेड है और 'सी. वेव' की वेबसाइट प्रतिवादी जलयान को अनावृत्त नाव चार्टर सेवा प्रदाता के रूप में वर्णित नहीं करती । प्रतिवादी ने निवेदन किया कि जब मोबीन इंटरनेशनल प्रतिवादी जलयान का सेवा प्रदाता था और तारीख 29 जून, 2017 का वहन-पत्र प्रतिवादी जलयान के स्वामी द्वारा जारी किया जा चुका था, तो वर्तमान वाद के अंतर्गत वादी का दावा 2017 के अधिनियम की धारा 4(1)(च)(छ) के अधीन 'समुद्री दावा' पद के अंतर्गत नहीं आता । वादी ने तारीख 10 अगस्त, 2018 के आदेश को प्रभावशून्य किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदक की ओर से दी गई अन्य दलीलों के संबंध में निवेदन किया कि शारजाह स्थित न्यायालयों द्वारा दिया गया विनिश्चय प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध वर्तमान नौवहन वाद में वादी के दावे पर लागू नहीं होता । अत:, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वादी ने शारजाह न्यायालय के समक्ष उक्त कार्यवाही के फाइल किए जाने का प्रकटीकरण न किए जाने के द्वारा किसी तात्विक तथ्य को और उस कार्यवाही में पारित आदेशों को इस न्यायालय से छुपाया है । आगे यह दलील दी गई कि प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा तारीख 16 जुलाई, 2017 के उसके ई-मेल में किए गए अभिकथन जिनके द्वारा तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र को जारी किए जाने से इनकार किया गया है, पर इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विश्वास

नहीं किया जा सकता कि उसी मास्टर ने वादी को अनेक अन्य ई-मेल प्रतिवादी जलयान की आवाजाही को निर्देशित करते हुए जारी किए थे । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वादी ने प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा जारी किए गए तारीख 16 जुलाई, 2017 के उक्त ई-मेल का प्रकटीकरण न किए जाने के द्वारा किसी तात्विक तथ्य जो प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध उसके समुद्री दावे को प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए प्रस्तुत नौवहन वाद में वादी के दावे पर कोई बाध्यकारी प्रभाव रखता है, को छुपाया है । वादी ने सिल्क रोड पेट्रोलियम एफ. जेड. ई. के पक्ष में प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा जारी किए तारीख 5 जुलाई, 2017 के वहन-पत्र की शुद्धता को विवादित किया है । **क्रिसोमर कारपोरेशन** बनाम **एम. जे. आर. स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया । वादी ने प्रकथन किया है कि वर्तमान मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह 2017 के अधिनियम के अंतर्गत प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध समुद्री दावे का मामला है । यह दलील देते हुए वादी ने निवेदन किया कि वादी 2018 के सामान्य आवेदन सं. 2303 में किसी भी अनंतरिम आदेश को अभिप्राप्त करने का हकदार नहीं है और इस न्यायालय को आवेदक को अनुज्ञा प्रदान करनी चाहिए कि वह आवेदक द्वारा फाइल किए गए आवेदन की प्रतिरक्षा में अपना शपथपत्र फाइल करे ।

12. हमने, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और साथ ही वादी और आवेदक द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया । इस बात पर विचार करते हुए कि तारीख 5 जून, 2015 के आवेदक और जलयान के स्वामी अर्थात् एवरग्रीन शिपिंग लिमिटेड के मध्य निष्पादित सेवा प्रदाता करार और इस आवेदन में प्रकट किए गए अन्य दस्तावेजों पर विचार करते हुए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि प्रतिवादी जलयान का अनावृत्त सेवा प्रदाता आवेदक है और इस प्रकार, वही प्रतिवादी जलयान में हितबद्ध व्यक्ति है । हमारे समक्ष प्रस्तुत नौवहन वाद में वादी का वाद कारण तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र पर आधारित है, जिसको अभिकथित रूप से प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा जारी किया गया

---

[1] 2017 एस. सी. सी. ऑनलाइन 1104 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 5530.

था । वादी ने वादपत्र और साथ ही गिरफ्तारी के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथपत्र में प्रतिवादी जलयान के मास्टर को संबोधित तारीख 14 जुलाई, 2017 की उसकी ई-मेल को जारी किए जाने का प्रकथन प्रतिवादी जलयान पर तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र के आधार पर लदे हुए माल पर अपने अधिकार का दावा करते हुए तारीख 14 जुलाई, 2017 की वादी की ई-मेल के उत्तर में प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा तारीख 16 जुलाई, 2017 का ई-मेल जारी किए जाने के तथ्य को वादी द्वारा विवादित नहीं किया गया है । वादी के अनुसार तारीख 16 जुलाई, 2017 की उपरोक्त ई-मेल का प्रकटन किए जाने में उसके द्वारा की गई चूक का यह अर्थ नहीं है कि उसने किसी तात्विक तथ्य को छुपाया है । तारीख 16 जुलाई, 2017 की उपरोक्त ई-मेल में प्रतिवादी जलयान के मास्टर ने स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में कहा था कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के उपरोक्त वहन-पत्र को जारी नहीं किया था और उन तथ्यों का भी उल्लेख किया, जिनके संबंध में उसको तारीख 29 जून, 2017 के उपरोक्त वहन-पत्र को जारी करने का कोई कारण उद्भूत नहीं हुआ था । वादी ने तारीख 16 जुलाई, 2017 के उपरोक्त ई-मेल, जिसके द्वारा प्रतिवादी जलयान के मास्टर के उस प्रकथन को विवादित किया गया है कि उसमें तारीख 29 जून, 2017 के उपरोक्त वहन-पत्र को जारी नहीं किया था, का कोई उत्तर नहीं दिया है । अतः, इस मामले में जो एकमात्र निष्कर्ष निकाला जाना शेष है, यह है कि वादी ने प्रतिवादी जलयान के मास्टर द्वारा किए गए इस कथन को स्वीकार कर लिया है कि उसने तारीख 29 जून, 2017 के वहन-पत्र को जारी नहीं किया था । यह एकमात्र कारण हो सकता है जिसके लिए वादी ने प्रतिवादी जलयान के मास्टर के तारीख 16 जुलाई, 2017 के उपरोक्त ई-मेल का प्रकटीकरण नहीं किया है और उसके द्वारा की गई इस प्रकार की चूक तात्विक तथ्यों को छुपाए जाने की कोटि के अंतर्गत नहीं आती । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वादी का प्रतिवादी जलयान के विरुद्ध कोई वाद कारण उत्पन्न नहीं हुआ । वादी ने तारीख 10 अगस्त, 2018 का उपरोक्त आदेश प्रतिवादी जलयान को गिरफ्तार किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ इस

न्यायालय से तात्विक तथ्यों को छुपाते हुए अभिप्राप्त किया था । मैं मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, आवेदक की इस दलील में सार पाता हूं कि वादी ने शारजाह की आरंभिक न्यायालय और अपीली न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां फाइल की थीं और उसके द्वारा फाइल किए गए वादपत्र और वादी को गिरफ्तार किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथपत्र पर आदेश पारित किए गए थे, के तथ्य का प्रकटीकरण न किए जाने के द्वारा इस न्यायालय से तात्विक तथ्यों को छुपाया है ।

13. वादी द्वारा पूर्वोक्त कारणोंवश फाइल किया गया आवेदन, जो 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2260 है, खारिज किया जाता है और तारीख 10 अगस्त, 2018 का गिरफ्तारी का आदेश 10,00,000/- रुपए (दस लाख रुपए) की निर्धारित लागत, जिसका संदाय वादी द्वारा आवेदक को आज की तारीख से दो सप्ताह के भीतर किया जाएगा, के साथ प्रभावशून्य किया जाता है । इसमें चूक होने पर आवेदक वादी से लागत की रकम विधि अनुसार वसूल कर सकेगा । आवेदक वादी से लागत और प्रतिवादी जलयान को दोषपूर्ण ढ़ंग से कब्जे में लिए जाने के कारण बर्दाश्त किए गए नुकसान को वसूल करने का भी हकदार होगा ।

14. मार्शल को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश के क्रियान्वित किए जाने योग्य भाग को प्रतिवादी जलयान के मास्टर, कोलकाता पत्तन न्यास के प्राधिकारियों, सीमाशुल्क प्राधिकारियों को और प्रतिवादी जलयान को तुरंत निर्मुक्त किए जाने के प्रयोजनार्थ अन्य संबद्ध प्राधिकारियों को तुरंत संसूचित करे ।

15. उपरोक्त निर्देशों के साथ 2018 का सामान्य आवेदन सं. 2303 मंजूर किया जाता है ।

16. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने आदेश के क्रियान्वयन योग्य भाग के क्रियान्वयन को स्थगित किए जाने की प्रार्थना की । इस प्रार्थना पर विचार किया गया और इसको अस्वीकृत किया गया ।

17. इस निर्णय की सत्यापित प्रतियों की फोटो प्रति पक्षों को अपेक्षित औपचारिकताओं के अनुपालन के पश्चात् तत्काल उपलब्ध करा दी जाए, यदि उन्होंने इसके लिए आवेदन किया हो ।

आवेदन खारिज किया गया ।

अवि.

---

**(2019) 1 सि. नि. प. 322** **कलकत्ता**

## बज बज कंपनी लिमिटेड

बनाम

## नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

तारीख 6 सितंबर, 2018

**न्यायमूर्ति विश्वजीत बसु**

**उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) – धारा 17 और 21 [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 227] – आर्थिक अधिकारिता की कमी के आधार पर राज्य आयोग द्वारा परिवाद खारिज किया जाना – राज्य आयोग को ऐसे परिवादों पर विचार करने की आर्थिक अधिकारिता प्राप्त है, जहां माल और सेवाओं का मूल्य एक करोड़ रुपए से अधिक न हो – परिवाद के अंतर्गत किया गया दावा एक करोड़ से अधिक नहीं – राज्य आयोग द्वारा अधिकारिता के प्रयोग से इनकार किया जाना परिवाद के दावा मूल्य के त्रुटिपूर्ण निर्धारण पर आधारित है – राज्य आयोग का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 227 – उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति – उच्च न्यायालय को उस समस्त क्षेत्र के संबंध में, जिसमें वह अधिकारिता का प्रयोग करता है, समस्त अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों के ऊपर पर्यवेक्षण की व्यापक शक्ति प्राप्त होती है – यह शक्ति सीमित या राज्य विधान-मंडल के किसी अधिनियम द्वारा बाधित नहीं हो सकती – पर्यवेक्षणीय शक्ति उच्च**

**न्यायालय के प्राधिकार की सीमाओं के भीतर स्थित अधिकरणों पर भी विस्तारित होती है जिनको इस बात को सुनिश्चित करना होता है कि वे विधि का पालन करें ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 227 – उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति – अनुच्छेद 227 के अधीन प्रदत्त पर्यवेक्षण की शक्ति वैवेकिक है – इस शक्ति का प्रयोग विरल परिस्थितियों में और मात्र अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों को उनके प्राधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए, न कि मात्र त्रुटियों की शुद्धि के प्रयोजनार्थ ।**

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि पश्चिमी बंगाल राज्य उपभोक्ता संरक्षण आयोग ने आक्षेपित आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि चूंकि बीमा मूल्य 18,00,00,000/- रुपए था/है, आयोग को परिवाद पर विचार करने की आर्थिक अधिकारिता प्राप्त नहीं है और उन्होंने आर्थिक अधिकारिता की कमी के आधार पर परिवाद को खारिज कर दिया । परिवादी ने राज्य आयोग के आदेश से व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष यह पुनरीक्षण आवेदन प्रस्तुत किया । याचिका मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – जो प्रश्न हमारे द्वारा विचारणार्थ उद्भूत होता है, यह है कि जब राज्य आयोग द्वारा अधिकारिता के प्रयोग में कोई स्पष्ट त्रुटि कारित की गई है, तो क्या अनुकल्पित अनुतोषों को प्राप्त करने का सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश में मध्यक्षेप को विवर्जित करता है, जब याची के पास राष्ट्रीय आयोग के समक्ष उक्त अधिनियम की धारा 21(ख) के अधीन पुनरीक्षण के माध्यम से आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का अनुतोष उपलब्ध है । कानूनी अनुतोषों को अभिप्राप्त किए जाने की अपेक्षा करने वाला नियम विधि का नियम न होकर एक नीति, सुविधा और वैवेकिकता का नियम है । यह सत्य है कि उच्च न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षण की शक्ति का प्रयोग किसी गलत या त्रुटिपूर्ण विनिश्चय को दुरुस्त किए जाने के प्रयोजनार्थ एक अपीली न्यायालय की भांति नहीं किया जाना चाहिए बल्कि यह भी समान रूप से सत्य है कि यदि कोई मामला कर्तव्य

से घोर विचलन का है, जिसके परिणामस्वरूप किसी पक्ष को घोर अन्याय होने की संभाव्यता है, तो पर्यवेक्षण की ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता । नि:संदेह रूप से पर्यवेक्षण की शक्ति का प्रयोग अत्यधिक आपवादिक परिस्थितियों में किया जाना चाहिए । आनुकल्पिक अनुतोषों को प्राप्त किए जाने का प्रयास किए जाने का नियम स्व-अधिरोपित सीमा का नियम है । जब निचला न्यायालय या अधिकरण प्रत्यक्ष रूप से अपने समक्ष लंबित कार्यवाहियों को ऐसे तरीके में संचालित करते हैं जिससे वरिष्ठ न्यायालयों की निष्पक्षता का उल्लंघन होता है या वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण करते हैं, तो वरिष्ठ न्यायालय अपनी इस प्रकार की सीमाओं पर रोक लगा सकते हैं । आनुकल्पिक अनुतोषों को प्राप्त किए जाने के प्रयासों का सिद्धांत, जो तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अधिक विनिर्दिष्ट होना चाहिए, आपवादिक परिस्थितियों की अनुपस्थिति में वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षण की शक्ति के प्रयोग में बाधाएं उत्पन्न कर सकता है । उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि पश्चिमी बंगाल के विद्वान् राज्य उपभोक्ता विवाद निस्तारण आयोग ने याची के दावे का मूल्यांकन करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि कारित की है और तद्द्वारा अशुद्ध रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि उक्त आयोग को याची के परिवाद की सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने के प्रयोजनार्थ वित्तीय अधिकारिता प्राप्त नहीं है । तद्नुसार, आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । (पैरा 8, 11, 12 और 15)

**निर्दिष्ट निर्णय**

पैरा

[2014] मनु/डब्ल्यू.बी./0064/2014 :
**गेनवेल इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **अशोक कुमार अग्रवाल और अन्य** । 10

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 165.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

**याची की ओर से** सर्वश्री हीरणमोय भट्टाचार्य, तनमय मुखर्जी, अरिंदम चंद्रा और आतीश घोष

**प्रत्यर्थी की ओर से** श्री राजेश सिंह

**निर्णय**

संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह पुनरीक्षण आवेदन उपभोक्ता/शिकायतकर्ता की ओर से पश्चिमी बंगाल के विद्वान् राज्य उपभोक्ता विवाद निस्तारण आयोग द्वारा 2014 के परिवाद मामला सं. सी.सी./78 में पारित किए गए तारीख 5 दिसंबर, 2017 के आदेश के विरुद्ध फाइल किया है ।

2. याची ने 1986 के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 12(क) के अधीन यह आवेदन निम्नलिखित अनुतोषों के लिए प्रार्थना करते हुए फाइल किया है :–

"(क) परिवाद को स्वीकार किया जाए और विपक्षी बीमा कंपनी को कारण बताओ सूचना जारी की जाए ;

(ख) बीमा कंपनी को उनके अधिकारों और प्रस्तुत परिवाद में दी गई दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना 34,01,274/- रुपए की स्वीकृत रकम का संदाय करने के लिए निर्देशित करते हुए अंतरिम आदेश पारित किया जाए ;

(ग) बीमा कंपनी को परिवादी पर समस्त संलग्नकों के साथ संपूर्ण सर्वेक्षण रिपोर्ट की प्रति और विस्तारपूर्वक गणना-पत्र की तामीली किए जाने के लिए निर्देशित किया जाए ;

(घ) परिवादी को अनुपूरक शपथपत्र फाइल किए जाने के द्वारा सर्वेक्षण रिपोर्ट के संबंध में उचित कार्रवाई किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की जाए ;

(ङ) उपरोक्त प्रार्थना (क), (ख), (ग) और (घ) के संबंध में अनंतरिम आदेश पारित किया जाए ;

(च) बीमा कंपनी को 34,29,441/- रुपए की शेष राशि का संदाय किए जाने के लिए निर्देशित किया जाए ;

(छ) तारीख 10 जनवरी, 2013 से दावा दर्ज कराए जाने की

तारीख से 34,29,441/- रुपए की शेष राशि के संदाय की तारीख तक 12% प्रतिवर्ष ब्याज का संदाय कराया जाए ;

(ज) बीमा कंपनी द्वारा एक वर्ष से अधिक की अवधि जब दावा लंबित था, के लिए प्रपीड़न बर्दाश्त किए जाने के संबंध में 50,00,000/- रुपए का प्रतिकर निर्धारित किया जाए ;

(झ) मुकदमेबाजी की लागत की बाबत 50,000/- रुपए की निर्धारित रकम दिलाए जाने का आदेश पारित किया जाए ।"

3. विद्वान् राज्य आयोग ने आक्षेपित आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि चूंकि बीमा मूल्य 18,00,00,000/- रुपए था/है, आयोग को परिवाद पर विचार करने की आर्थिक अधिकारिता प्राप्त नहीं है और आर्थिक अधिकारिता की कमी के आधार पर उसको खारिज करने की भी अधिकारिता प्राप्त नहीं है ।

4. अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (1)(क)(i) राज्य आयोग की आर्थिक अधिकारिता की सीमा के मूल्यांकन के प्रयोजनार्थ सुसंगत है और यह धारा वर्तमान संदर्भ में सुसंगत होने के कारण नीचे प्रत्युत्पादित की जा रही है :-

"17. **राज्य आयोग की अधिकारिता** - इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य आयोग को निम्नलिखित अधिकारिता होगी, अर्थात् –

(क)(i) एसे परिवादों को ग्रहण करना जहां माल या सेवाओं का मूल्य और दावा प्रतिकर यदि कोई है, पांच लाख रुपए से अधिक है, किंतु बीस लाख रुपए से अधिक नहीं है ।

(ii) .....

(ख) .....

(2) .....

(क) .....

(ख) .....

(ग) ....."

5. अत: यह स्पष्ट है कि दावे के मूल्यांकन से राज्य आयोग की आर्थिक अधिकारिता विनिर्धारित होती है । वर्तमान मामले में परिवादी/याची का संपूर्ण दावा, यदि उस पर एक साथ विचार किया जाए, एक करोड़ रुपए से अधिक का नहीं है ।

6. विपक्षी की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री राजेश सिंह, इस बात को विवादित नहीं कर सके कि याची का दावा एक करोड़ रुपए से कम का है ।

7. पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि विद्वान् राज्य आयोग ने याची के परिवाद पर विचार न करके क्षेत्राधिकार के संबंध में स्पष्ट त्रुटि कारित की है ।

8. अब जो प्रश्न हमारे द्वारा विचारणार्थ उद्भूत होता है, यह है कि जब राज्य आयोग द्वारा अधिकारिता के प्रयोग में कोई स्पष्ट त्रुटि कारित की गई है, तो क्या आनुकल्पित अनुतोषों को प्राप्त करने का सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश में मध्यक्षेप को विवर्जित करता है, जब याची के पास राष्ट्रीय आयोग के समक्ष उक्त अधिनियम की धारा 21(ख) के अधीन पुनरीक्षण के माध्यम से आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का अनुतोष उपलब्ध है ।

9. उक्त अधिनियम की धारा 21 राष्ट्रीय आयोग की अधिकारिता पर विचार करती है, जिसको भी सुसंगत होने के कारण नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :–

> "21. **राष्ट्रीय आयोग की अधिकारिता** – इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रीय आयोग को निम्नलिखित अधिकारिता होगी, अर्थात् –
>
> (क)(i) ऐसे परिवादों को ग्रहण करना जहां माल का सेवाओं का मूल्य अथवा दावा प्रतिकर यदि कोई है, बीस लाख रुपए से अधिक है ; और
>
> (ii) किसी राज्य आयोग के आदेशों के विरुद्ध अपील ग्रहण करना ;

(ख) जहां राष्ट्रीय आयोग को यह प्रतीत हो कि राज्य आयोग ने ऐसी किसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है या जो इस प्रकार निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है या उसने अपनी अधिकारिता का प्रयोग अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता से किया है वहां किसी ऐसे उपभोक्ता विवाद के जो किसी राज्य आयोग के समक्ष लंबित है या उसके द्वारा विनिश्चित किया गया है, अभिलेखों को मंगाना और समुचित आदेश पारित करना ।"

10. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री भट्टाचार्या ने **गेनवेल इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **अशोक कुमार अग्रवाल और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन पर्यवेक्षण की शक्ति अत्यधिक व्यापक और वैवेकिक प्रकृति की होती है और इसका प्रयोग न्याय के उद्देश्यों के अग्रसरण और उनको सुरक्षित किए जाने और साथ ही अन्याय को समाप्त जाने के लिए किया जाता है । उन्होंने निवेदन किया कि वर्तमान मामले में आर्थिक अधिकारिता की सीमा के मूल्यांकन में राज्य आयोग द्वारा कारित त्रुटि, जैसाकि उक्त अधिनियम की धारा 17(1)(क)(i) के अधीन अनुध्यात है, स्पष्ट है और यह उचित मामला है जिसमें उच्च न्यायालय को राज्य आयोग के ऊपर पर्यवेक्षण की शक्ति का प्रयोग करना चाहिए ।

11. कानूनी अनुतोषों को अभिप्राप्त किए जाने की अपेक्षा करने वाला नियम विधि का नियम न होकर एक नीति, सुविधा और वैवेकिकता का नियम है । यह सत्य है कि उच्च न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षण की शक्ति का प्रयोग किसी गलत या त्रुटिपूर्ण विनिश्चय को दुरुस्त किए जाने के प्रयोजनार्थ एक अपीली न्यायालय की भांति नहीं किया जाना चाहिए बल्कि यह भी समान रूप से सत्य है कि यदि कोई मामला कर्तव्य से घोर विचलन का है, जिसके परिणामस्वरूप किसी पक्ष

---

[1] मनु/डब्ल्यू.बी./0064/2014.

को घोर अन्याय होने की संभाव्यता है, तो पर्यवेक्षण की ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता । नि:संदेह रूप से पर्यवेक्षण की शक्ति का प्रयोग अत्यधिक आपवादिक परिस्थितियों में किया जाना चाहिए । आनुकल्पिक अनुतोषों को प्राप्त किए जाने का प्रयास किए जाने का नियम स्व-अधिरोपित सीमा का नियम है ।

12. जब निचला न्यायालय या अधिकरण प्रत्यक्ष रूप से अपने समक्ष लंबित कार्यवाहियों को ऐसे तरीके में संचालित करते हैं जिससे वरिष्ठ न्यायालयों की निष्पक्षता का उल्लंघन होता है या वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण करते हैं, तो वरिष्ठ न्यायालय अपनी इस प्रकार की सीमाओं पर रोक लगा सकते हैं । आनुकल्पिक अनुतोषों को प्राप्त किए जाने के प्रयासों का सिद्धांत, जो तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अधिक विनिर्दिष्ट होना चाहिए, आपवादिक परिस्थितियों की अनुपस्थिति में वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षण की शक्ति के प्रयोग में बाधाएं उत्पन्न कर सकता है ।

13. वर्तमान मामले में, अपनी अधिकारिता का प्रयोग किए जाने से राज्य आयोग का इनकार परिवादी के दावा मूल्य के गलत निर्धारण पर आधारित है । न्यायालय अपनी स्वयं की पहल के आधार पर अपनी अधिकारिता को समाप्त नहीं कर सकता जब तक कि कानून ऐसी अधिकारिता के प्रयोग पर रोक न लगा दे ।

14. श्री भट्टाचार्या द्वारा जिस विनिश्चय का अवलंब लिया गया है, में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों पर विचारोपरांत पैरा 7 में न्याय प्रदान करने वाले दृष्टिकोण को अपनाया और राष्ट्रीय आयोग के समक्ष उक्त अधिनियम की धारा 21(ख) के अधीन पुनरीक्षण के आनुकल्पित अनुतोष की विद्यमान्यता के बावजूद आक्षेपित आदेश में मध्यक्षेप किया । उक्त संसूचित विनिश्चय के पैरा 6 और 7 को सुसंगत होने के कारण नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

> "6. पूर्वोक्त उपबंधों को अर्थपूर्वक पढ़े जाने पर राष्ट्रीय आयोग में परिवादों पर विचार किए जाने की अधिकारिता निहित है, जहां माल या सेवाओं का मूल्य और प्रतिकर और राज्य आयोग के

समक्ष किसी आदेश के विरुद्ध फाइल की गई किसी अपील का मूल्यांकन एक करोड़ रुपए से अधिक हो जाता है । राष्ट्रीय आयोग को पुन: अभिलेखों को तलब करने और राज्य आयोग के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने या निस्तारित हो चुके मामले में समुचित आदेश पारित करने की शक्ति निहित है, यदि यह प्रतीत होता है कि राज्य आयोग ने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसमें विधि की दृष्टि में निहित नहीं है या वह निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में विफल रहा है या उसने विधि विरुद्ध रूप से या तात्विक अनियमितता के साथ कार्य किया है, चाहे यह संकल्पना ही क्यों न की गई हो कि राष्ट्रीय आयोग को राज्य आयोग के किसी आदेश के विरुद्ध आरंभ की गई कार्यवाही को निर्णीत करने और उस पर विचार करने की अधिकारिता और सक्षमता प्राप्त है और वह आवश्यक रूप से संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति के अपर्वजन में है । वरयाम सिंह और अन्य **बनाम** अमरनाथ और एक अन्य, [मनु/एस.सी. 0121/1954 = ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 215] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति का उद्‌गम स्थान खोजने का प्रयास किया और अभिनिर्धारित किया गया कि इसका प्रयोग प्रशासनिक और न्यायिक दोनों रूपों में किया जा सकता है । अछुतानंद वैद्‌य **बनाम** प्रफुल्य कुमार गेयन और अन्य [मनु/एस.सी. 0498/1997 = (1997) 5 एस. सी. सी. 76 = ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2077] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय त्रुटिपूर्ण उपधारणा या अधिकारिता के परे कार्य किए जाने, अधिकारिता का प्रयोग करने से इनकार किए जाने, विधि की किसी गलती से अभिलेख पर उपलब्ध विभेदित दृश्यमान विधि की त्रुटि, प्राधिकार या विवेक के भ्रांतिपूर्ण या मनमाने प्रयोग, किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में प्रक्रिया में स्पष्ट त्रुटि, जो तर्क विरुद्ध और किसी सामग्री पर आधारित नहीं है और प्रकट रूप से अन्याय के परिणामस्वरूप है, संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन मध्यक्षेप कर सकता है ।

7. इसमें किसी ऐसे विवाद को स्वीकार नहीं किया गया है कि पर्यवेक्षण की शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा किसी गलत या त्रुटिपूर्ण विनिश्चय को शुद्ध करने के प्रयोजनार्थ अपीली न्यायालय की भांति नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि अधीनस्थ न्यायालय या अधिकरण द्वारा किसी पक्ष को शक्ति का घोर दुरुपयोग और कर्तव्य में घोर विचलन निर्दिष्ट न हो [देखें अवशेफ मठाई और अन्य **बनाम** एम. अब्दुल खादीर, मनु./एस.सी./0718/2001 = (2002) 1 एस. सी. सी. 319 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 110] । उच्चतम न्यायालय द्वारा दिल्ली राज्य **बनाम** नौजोत साधु और अन्य, [मनु./एस.सी./0396/2003 = (2003) 6 एस. सी. सी. 641] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है –

> 28. अत: विधि यह है कि संविधान का अनुच्छेद 227 उच्च न्यायालय को उस समस्त क्षेत्र के संबंध में, जिसमें वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, समस्त न्यायालयों और अधिकरणों के ऊपर पर्यवेक्षण की शक्ति प्रदान करता है। यह अधिकारिता सीमित या राज्य विधान-मंडल के किसी अधिनियम द्वारा बाधित नहीं हो सकती । पर्यवेक्षणीय अधिकारिता उच्च न्यायालय के प्राधिकार की सीमाओं के भीतर स्थित अधीनस्थ अधिकरणों पर विस्तारित होती है और उसको इस बात को सुनिश्चित करना होता है कि वे विधि का पालन करें । अनुच्छेद 227 के अधीन प्रदत्त शक्तियां विस्तृत हैं और उनका प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जा सकता है । उनका प्रयोग किसी अंतर्वर्ती आदेश में मध्यक्षेप किए जाने के प्रयोजनार्थ भी किया जा सकता है । तथापि, अनुच्छेद 227 के अधीन प्रदत्त शक्ति वैवेकिक शक्ति है और किसी भी उच्च न्यायालय के किसी आदेश के बारे में यह कहा जाना कठिन होता है कि उसके द्वारा प्रयोग की गई इस शक्ति का स्रोत क्या है, जब उच्च न्यायालय स्वयं ऐसी किसी वैवेकिक शक्ति का प्रयोग तात्पर्यित न करता हो । यह स्थिरीकृत विधि है कि अनुच्छेद

227 के अधीन न्यायिक पर्यवेक्षण की इस शक्ति का प्रयोग विरल परिस्थितियों में और मात्र अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों को उनके प्राधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए और न कि मात्र त्रुटियों की शुद्धि के प्रयोजनार्थ । पुनः, जहां कानून पुनरीक्षण की शक्तियों के प्रयोग को वर्जित करता है, उसको संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन मध्यक्षेप की अपेक्षा अत्यंत आपवादिक परिस्थितियों में करनी चाहिए, चूंकि पर्यवेक्षण की शक्ति का यह आशय नहीं है कि कानूनी विधि को दरकिनार किया जाए । यह स्थिरीकृत विधि है कि अनुच्छेद 227 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग 'किसी भी परिस्थिति में फाइल की गई अपील की युक्ति के रूप में' नहीं किया जा सकता ।"

15. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि पश्चिमी बंगाल के विद्वान् राज्य उपभोक्ता विवाद निस्तारण आयोग ने याची के दावे का मूल्यांकन करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि कारित की है और तद्द्वारा अशुद्ध रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि उक्त आयोग को याची के परिवाद की सुनवाई के लिए ग्रहण किए जाने के प्रयोजनार्थ वित्तीय अधिकारिता प्राप्त नहीं है । तद्नुसार, आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है ।

16. 2018 का उपभोक्ता मामला सं. 165 सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण किया जाता है । विद्वान् राज्य आयोग से अनुरोध किया जाता है कि वे परिवाद मामला संख्या सी.सी./78/2014 की शीघ्र सुनवाई करे । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा है ।

17. यदि इस आदेश की सत्यापित फोटो प्रति के लिए तत्कालिक रूप से आवेदन किया जाता है, तो पक्षों को समस्त अपेक्षित औपचारिकताओं के अनुपालन के पश्चात् उपलब्ध करा दी जाएं ।

याचिका मंजूर की गई ।

अवि.

(2019) 1 सि. नि. प. 333 छत्तीसगढ़

# रवि शंकर त्रिपाठी प्रोप्राइटरशिप फर्म (मैसर्स) बिलासपुर, छत्तीसगढ़

बनाम

# छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

तारीख 7 फरवरी, 2018

**मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति शरद कुमार गुप्ता**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 – कतिपय वस्तुओं के प्रदाय और सन्निर्माण के लिए निविदा – तकनीकी बोली और वित्तीय बोली – जहां तकनीकी बोली अन्तर्वलित हो वहां प्रथमत: तकनीकी अर्हता का निर्धारण किया जाना चाहिए – प्राधिकारी तकनीकी बोली के निर्धारण के प्रक्रम पर उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, वित्तीय बोली का निर्देश करके बोली वापस नहीं ले सकते हैं ।**

तृतीय प्रत्यर्थी-नगर निगम ने आंतरिक जल प्रदाय, सेनेटरी और आंतरिक विद्युतीकरण इत्यादि सहित बहुमंज़िलीय इमारत के सन्निर्माण के लिए निविदा आमंत्रित की थी । याची बोली लगाने वालों में से एक था । उसने अन्यों के साथ तकनीकी बोली पूरी की थी । इसका यह अर्थ है कि उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जिन्होंने तकनीकि बोलियां पूरी की थीं, विचार किया जाना था । उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की थी, वित्तीय बोलियों पर विचार करने पर यह पाया गया था कि याची ने निम्नतर निविदा बोली लगाई है और उसे एल.-1 के रूप में चिह्नित किया गया था । तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् तृतीय प्रत्यर्थी ने पुन: तकनीकी बोली खोली और उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली से तुलनात्मक मूल्यांकन किया जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी और उनमें याची भी एक था जिसे एल.-1 पर रखा गया था । इस आधार पर तृतीय प्रत्यर्थी ने यह निष्कर्ष निकाला कि उन व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने तकनीकी बोली नहीं लगाई थी, उद्धृत दरें याची की तकनीकी

बोली की अपेक्षा निम्नतर थीं । इस परिकल्पना के आधार पर याची को संविदा अधिनिर्णीत किए बिना तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा निविदा रद्द की गई थी । अतः याची ने व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका फाइल की । याचिका मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – लोक संविदाएं अधिनिर्णीत करने में पारदर्शिता खुली प्रतियोगिता की प्रक्रिया विकसित करके सुनिश्चित की जाती है । जहां तकनीकी मामले अन्तर्वलित हों वहां प्रथम निर्धारण तकनीकी अर्हता पर निर्भर होगा । तुलनात्मक तकनीकी अर्हता पर वित्तीय बोलियां बंद करके तकनीकी बोली के मूल्यांकन के प्रक्रम पर विचार किया जाएगा । जहां तकनीकी बोलियों का निर्धारण किया जाता है वहां अगले प्रक्रम पर बोलियों पर विचार किया जाएगा । तत्पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जो तकनीकी बोलियों के मूल्यांकन के प्रक्रम पर सफल हुए हैं, विचार किया जाएगा । तुलनात्मक दरों पर ऐसी विचारणा वित्तीय बोली का मूल्यांकन कही जाती है । उस प्राधिकारी द्वारा जिसने निविदाएं आमंत्रित की हैं, वित्तीय बोली का मूल्यांकन करने और निम्नतर निविदा का पता लगाने के पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली का निर्देश करके जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, बोली वापस लेना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । यदि उन्हें अनुज्ञात किया जाता है तो इससे आवश्यक रूप से ऐसी मनमानी स्थिति उत्पन्न होगी जहां वित्तीय बोली का तुलनात्मक मूल्यांकन उन व्यक्तियों को ध्यान में रखकर किया जाएगा जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की है और जिन्होंने उसी श्रृंखला में तकनीकी बोली पूरी नहीं की है । उन व्यक्तियों के जिन्हें तकनीकी बोली के प्रक्रम के पश्चात् असमान रखा गया है, ऐसे विचार करना मानो उन्होंने सजातीय वर्ग गठित किया है, संविधान के अनुच्छेद 14 का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । असमान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 14 के समानता के अधिकार के अतिक्रमण के बराबर होगा । तृतीय प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि प्रश्नगत प्रस्थापनाओं का आमंत्रण लोक परिक्षेत्र में अन्य किसी ज्ञात कारण के लिए लोक हित में विफल हुआ था और इसलिए रद्द किया गया था । परिणामतः यह कहा गया है कि निविदाओं के आमंत्रण का रद्दकरण

बेहतर प्रतियोगिता सुनिश्चित करने के लिए किया गया था । यह एक ऐसा पक्का मानदंड नहीं है जिसे विधि में मान्यता दी जा सके क्योंकि यह लोक परिक्षेत्र में एक आज्ञाकारी और असुरक्षित क्षेत्र प्रदान करेगी । यह पारदर्शिता के लिए घातक होगी और लोक संविदाओं के क्षेत्र में अऋजुता उत्पन्न करेगी । ऐसी कोई दलील मामले के तथ्यों या परिस्थितियों के आधार पर नहीं दी जा सकती । उपर्युक्त कारणों से यह रिट याचिका सफल होती है और इसलिए याची प्रश्नगत संविदा अधिनिर्णीत किए जाने का हकदार है । (पैरा 3, 4 और 5)

**आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका सं. 2527.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

**याची की ओर से** श्री बी. डी. गुरु

**प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री आर. के गुप्ता, एच. बी. अग्रवाल और (श्रीमती) प्रभा शर्मा

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति थोट्टाथिल बी. राधाकृष्णन ने दिया ।

**मु. न्या. राधाकृष्णन** – हमने याची के विद्वान् काउंसेल और राज्य/प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से विद्वान् उप महाधिवक्ता तथा तृतीय प्रत्यर्थी-नगर निगम की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल को सुना ।

2. तृतीय प्रत्यर्थी-नगर निगम ने आंतरिक जल प्रदाय, सेनेटरी और आंतरिक विद्युतीकरण इत्यादि सहित बहुमंज़िलीय इमारत के सन्निर्माण के लिए निविदा आमंत्रित की थी । याची बोली लगाने वालों में से एक था । उसने अन्यों के साथ तकनीकी बोली पूरी की थी । इसका यह अर्थ है कि उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जिन्होंने तकनीकि बोलियां पूरी की थीं, विचार किया जाना था । उन व्यक्तियों की जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की थी, वित्तीय बोलियों पर विचार करने पर यह पाया गया था कि याची ने निम्नतर निविदा बोली लगाई है और उसे एल.-1 के रूप में चिह्नित किया गया था । तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् तृतीय प्रत्यर्थी ने पुन: तकनीकी बोली खोली और उन व्यक्तियों की वित्तीय

बोली से तुलनात्मक मूल्यांकन किया जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी और उनमें याची भी एक था जिसे एल.-1 पर रखा गया था । इस आधार पर तृतीय प्रत्यर्थी ने यह निष्कर्ष निकाला कि उन व्यक्तियों द्वारा जिन्होंने तकनीकी बोली नहीं लगाई थी, उद्धृत दरें याची की तकनीकी बोली की अपेक्षा निम्नतर थीं । इस परिकल्पना के आधार पर याची को संविदा अधिनिर्णीत किए बिना तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा निविदा रद्द की गई थी ।

3. लोक संविदाएं अधिनिर्णीत करने में पारदर्शिता खुली प्रतियोगिता की प्रक्रिया विकसित करके सुनिश्चित की जाती है । जहां तकनीकी मामले अन्तर्वलित हों वहां प्रथम निर्धारण तकनीकी अर्हता पर निर्भर होगा । तुलनात्मक तकनीकी अर्हता पर वित्तीय बोलियां बंद करके तकनीकी बोली के मूल्यांकन के प्रक्रम पर विचार किया जाएगा । जहां तकनीकी बोलियों का निर्धारण किया जाता है वहां अगले प्रक्रम पर बोलियों पर विचार किया जाएगा । तत्पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोलियों पर जो तकनीकी बोलियों के मूल्यांकन के प्रक्रम पर सफल हुए हैं, विचार किया जाएगा । तुलनात्मक दरों पर ऐसी विचारणा वित्तीय बोली का मूल्यांकन कही जाती है । उस प्राधिकारी द्वारा जिसने निविदाएं आमंत्रित की हैं, वित्तीय बोली का मूल्यांकन करने और निम्नतर निविदा का पता लगाने के पश्चात् उन व्यक्तियों की वित्तीय बोली का निर्देश करके जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी नहीं की थी, बोली वापस लेना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । यदि उन्हें अनुज्ञात किया जाता है तो इससे आवश्यक रूप से ऐसी मनमानी स्थिति उत्पन्न होगी जहां वित्तीय बोली का तुलनात्मक मूल्यांकन उन व्यक्तियों को ध्यान में रखकर किया जाएगा जिन्होंने तकनीकी बोली पूरी की है और जिन्होंने उसी श्रृंखला में तकनीकी बोली पूरी नहीं की है । उन व्यक्तियों के जिन्हें तकनीकी बोली के प्रक्रम के पश्चात् असमान रखा गया है, ऐसे विचार करना मानो उन्होंने सजातीय वर्ग गठित किया है, संविधान के अनुच्छेद 14 का स्पष्टतया अतिक्रमण होगा । असमान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार संविधान के अनुच्छेद 14 के समानता के अधिकार के अतिक्रमण के बराबर होगा ।

4. तृतीय प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि प्रश्नगत

प्रस्थापनाओं का आमंत्रण लोक परिक्षेत्र में अन्य किसी ज्ञात कारण के लिए लोक हित में विफल हुआ था और इसलिए रद्द किया गया था । परिणामत: यह कहा गया है कि निविदाओं के आमंत्रण का रद्दकरण बेहतर प्रतियोगिता सुनिश्चित करने के लिए किया गया था । यह एक ऐसा पक्का मानदंड नहीं है जिसे विधि में मान्यता दी जा सके क्योंकि यह लोक परिक्षेत्र में एक आज्ञाकारी और असुरक्षित क्षेत्र प्रदान करेगी । यह पारदर्शिता के लिए घातक होगी और लोक संविदाओं के क्षेत्र में अऋजुता उत्पन्न करेगी । ऐसी कोई दलील मामले के तथ्यों या परिस्थितियों के आधार पर नहीं दी जा सकती ।

5. उपर्युक्त कारणों से यह रिट याचिका सफल होती है और इसलिए याची प्रश्नगत संविदा अधिनिर्णीत किए जाने का हकदार है ।

6. परिणामत: उपाबंध-पी/1 पुन: निविदा अभिखंडित करते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है और यह निदेश किया जाता है कि तारीख 7 जुलाई, 2017 के एन. आई. टी. के निबंधनों में और निविदा आमंत्रित करने की सूचना के जवाब में याची द्वारा की गई प्रस्थापना को मंजूर करते हुए याची के हक में कार्य आदेश जारी किया जाए । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 338 दिल्ली

# अभिमन्यू पोरिया

बनाम

# राजवीर सिंह और अन्य

तारीख 12 जनवरी, 2017

**न्यायमूर्ति (सुश्री) हीमा कोहली और न्यायमूर्ति (सुश्री) दीपा शर्मा**

**संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 4 – शब्द और पद – 'अप्राप्तवय' और 'संरक्षक' – परिभाषा – 'अप्राप्तवय' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है – 'संरक्षक' पद से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी अप्राप्तवय या उसकी संपत्ति अथवा दोनों की देखभाल करता हो ।**

**संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – धारा 7, 8 और 12 [सपठित हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 4, 6, 8 और 13] – अप्राप्तवय बालिका की अभिरक्षा – माता की मृत्यु के पश्चात् बच्ची की अभिरक्षा नाना-नानी के पास होना – पिता द्वारा नैसर्गिक संरक्षक और वित्तीय सम्पन्नता के आधार पर बच्ची की अभिरक्षा के लिए दावा – न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा बच्ची का कथन और उसकी इच्छा अभिलिखित किया जाना – बच्ची द्वारा अपने नाना-नानी और मामा के पास रहने पर बल दिया जाना – ऐसे किसी मामले में न्यायालय को नागरिकों के सहायक के रूप में कानूनी संरक्षक नियुक्त करने की अपनी विशेष अधिकारिता के प्रयोग में बालक या बालिका के कल्याण को प्राथमिक रूप में सुनिश्चित करना चाहिए – पिता को मात्र इस आधार पर कि वह बालक का नैसर्गिक संरक्षक है या उसके भरणपोषण और शिक्षा आदि के लिए अधिक सम्पन्न है, बालक की अभिरक्षा प्रदान करना उचित नहीं है – तथापि, पिता को बच्चे से मिलने के अधिकारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।**

मामले की तथ्यात्मक स्थिति का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । अपीलार्थी का प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की पुत्री प्रियंका के

साथ तारीख 1 जुलाई, 2009 को हिन्दू रीतियों के अनुसार विवाह हुआ था । प्रियंका पेशे से दंत चिकित्सक थी । आरंभतः पति और पत्नी रोहिणी, दिल्ली के सेक्टर 7 में रहते थे तथापि, बाद में वे गुड़गांव स्थित प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के आवास पर रहने के लिए चले गए थे । उनके विवाह-बंधन से तारीख 9 मार्च, 2010 को एक पुत्री प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय का जन्म हुआ था । चार वर्ष के पश्चात् अपीलार्थी की पत्नी की तारीख 22 अप्रैल, 2014 को गुड़गांव स्थित मेदांता मेडिसिटी अस्पताल में मृत्यु हो गई थी । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उसकी पत्नी मिरगी रोग से पीड़ित थी और उसकी मृत्यु इसी कारणवश हुई थी । सितंबर, 2014 के आरंभ में अपीलार्थी और उसकी अप्राप्तवय पुत्री प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के साथ सतत रूप से गुड़गांव में रहती रही । गुड़गांव में रहने के दौरान प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय पुत्री का जी. डी. गोयनका पब्लिक स्कूल, गुड़गांव में दाख़िला कराया गया था । सितंबर, 2014 के दूसरे सप्ताह में अपीलार्थी और उसकी पुत्री दिल्ली में एक किराए के मकान में रहने लगे । दिल्ली जाने के पश्चात् अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 3 का प्रथमतः जी. डी. गोयनका ला पेटाइट प्ले स्कूल और तत्पश्चात् पश्चिमी दिल्ली के श्रीराम ग्लोबल स्कूल और अंततः किन्दरगारटन दिल्ली स्थित जी. डी. गोयनका पब्लिक स्कूल में दाख़िला कराया गया था । अपीलार्थी ने यह दावा किया है कि उसकी पुत्री की गर्मियों की छुटटी के दौरान वे दोनों तारीख 25 जून, 2015 को हरियाणा के जींद शहर में रह रहे उसके मामा से मिलने गए थे । जब वह प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ दिल्ली के लिए जाने वाला था तो प्रत्यर्थी सं. 1 और उसके नातेदार तथा सहायक उसके मामा के मकान पर आए और बलपूर्वक उसकी अप्राप्तवय पुत्री को छीन लिया । इस अपील में अपीलार्थी/पिता ने विद्वान् कुटुंब न्यायालय, उत्तरी, रोहिणी, दिल्ली द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 12 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन का निपटान किया गया है । अपीलार्थी ने इस आवेदन में अपनी अप्राप्तवय पुत्री समरिदी सिंह जिसकी आयु 7 वर्ष और 9 मास है, की अंतरिम

अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया है । आवेदन की तारीख को अप्राप्तवय को प्रत्यर्थी सं. 3 के रूप में पक्षकार बनाया गया था जो वर्तमान में हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् अपने नाना-नानी की अभिरक्षा में है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा का अनुतोष अपीलार्थी को मंजूर करने से इनकार कर दिया और इसके बजाय न्यायालय ने आवेदन में अप्राप्तवय बालिका के संबंध में एक मास में दो बार मिलने के उसके अधिकार को मंजूर करते हुए आवेदन में किए गए वैकल्पिक अनुरोध को स्वीकार कर लिया । अत: वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि विधि की स्थिति की परीक्षा की जाए । अधिनियम, 1890 की विधि को संरक्षक और प्रतिपाल्य के संबंध में समेकित और संशोधित किया गया है । अधिनियम की धारा 4 जो कि परिभाषा खंड है, "अप्राप्तवय" पद को ऐसे किसी व्यक्ति के रूप में परिभाषित करती है जिसने भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 के उपबंधों के अधीन वयस्कता प्राप्त न की हो ; "संरक्षक" पद को ऐसे किसी व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो किसी अप्राप्तवय की या उसकी सम्पत्ति की या अप्राप्तवय और उसकी संपत्ति दोनों की देखभाल करने वाला हो ; "प्रतिपाल्य" पद को ऐसे किसी अप्राप्तवय के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके लिए या जिसकी संपत्ति के लिए या दोनों के लिए कोई संरक्षक है । एक अन्य कानून भी है जो हिन्दुओं में वयस्कता और सरंक्षकता के संबंध में है और वह हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 है । उक्त अधिनियमिति की धारा 4 "अप्राप्तवय" को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करती है जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है । "संरक्षक" पद को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो अप्राप्तवय या उसकी संपत्ति या दोनों की देखभाल और उसके शरीर और संपत्ति की देखभाल करता हो और इसमें नैसर्गिक संरक्षक सम्मिलित है । "नैसर्गिक संरक्षक" से ऐसा कोई संरक्षक अभिप्रेत है जिसका उल्लेख अधिनियम की धारा 6 में किया गया है । (पैरा 9 और 12)

1890 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने पर यह स्पष्टतया उपदर्शित होता है कि किसी अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा से संबंधित मामला एक ऐसी महत्वपूर्ण विचारणा है जिसको न्यायालय द्वारा "अप्राप्तवय के कल्याण" की परीक्षा करते समय महत्व देना चाहिए और उक्त पद को इसके वृहत अर्थ में लागू किया जाना चाहिए । किसी अप्राप्तवय के संरक्षक के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति करने या घोषणा करने का माता-पिता या नातेदारों को अधिकार नहीं है और यह अधिकार न्यायालय से संबंधित है । महत्वपूर्ण विचारणा यह है कि अप्राप्तवय बालक का कल्याण देखा जाए । जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा केवल अपीलार्थी द्वारा अधिनियम, 1890 की धारा 12 के अधीन फाइल किए आवेदन का निपटान किया है जो अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था । कुटुंब न्यायालय द्वारा अभी भी मुख्य अर्जी का न्यायनिर्णयन किया जाना है । अपीलार्थी ने अपने अंतरिम आवेदन में प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा के लिए प्रथम अनुतोष मांगा था और उसने वैकल्पिक अनुरोध नियमित अंतरालों के साथ अपनी अप्राप्तवय बच्ची के संबंध में उससे मिलने के अधिकारों के लिए किया है । आक्षेपित निर्णय के परिशालन मात्र से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को तारीख 22 अप्रैल, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 3 को न्यायालय में पेश करने के लिए निदेश दिया गया था और उन्होंने निदेश का पालन किया था । कुटुंब न्यायालय ने प्रथमत: प्रत्यर्थी सं. 3 को बातचीत के लिए अपने सदन में और बाद में अपीलार्थी को और तत्पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 की नानी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 को और उसके पश्चात् श्री भालेन्द्र सिंह अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 के मामा को अपने कक्षसदन में बुलाया और अन्तत: पक्षकारों के काउंसेलों को सदन में बुलाया गया था । उपर्युक्त प्रत्येक पक्षकार के संबंध में बातचीत को पृथक्-पृथक् अभिलिखित करके मुद्राबंद लिफाफे में रखा गया था । विद्वान् कुटुंब न्यायालय न्यायाधीश ने पक्षकारों के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् पुन: प्रत्यर्थी सं. 3 को अपने कक्षसदन में बुलाया और उससे पुन: पूछताछ की । कुटुंब न्यायालय के न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी सं. 3 के

कहने पर उसके मामा श्री भालेन्द्र सिंह को पुन: बुलाकर बच्ची से बातचीत की और इस बातचीत को पृथक्त: अभिलिखित करके एक सीलबंद लिफाफे में रखा । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में यह ठीक ही मत व्यक्त किया है कि जब अंतरिम अभिरक्षा के विवाद्यक पर विचार किया जाए तो न्यायालय से यह पूर्णतया अपेक्षित है कि वह इस बारे में निर्धारण करे कि क्या बालक का कल्याण प्राथमिक महत्व का विषय है और क्या पिता एक नैसर्गिक अभिरक्षक के रूप में अथवा प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् नाना-नानी द्वारा जिनके पास पहले से ही बच्ची की अभिरक्षा है, बेहतर तौर पर देखभाल करेंगे अथवा क्या प्रत्यर्थी सं. 3 की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थिति यह अपेक्षा करती है कि उसकी अंतरिम अभिरक्षा अपीलार्थी/पिता को दे दी जाए । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 22 अप्रैल, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ विस्तार से बातचीत करने के पश्चात् यह राय व्यक्त की कि बच्ची को अपीलार्थी/पिता के सुपुर्द करने में बच्ची का कल्याण नहीं है क्योंकि बच्ची के नाना-नानी द्वारा और उसके मामा द्वारा बच्ची की ठीक प्रकार से देखभाल की जा रही है । बातचीत के दौरान अपीलार्थी की उपस्थिति के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 की प्रतिक्रिया को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए । कुटुंब न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 अपीलार्थी की उपस्थिति में स्पष्ट रूप से घबराती, कांपती और असहज हो जाती है और वह लगातार रोती रहती है और उसे सांत्वना देना और संभालना कठिन हो जाता है । संबद्ध तथ्यों और परिस्थितियों और संपूर्ण प्रास्थिति को दृष्टिगत करते हुए संतुलन प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के हक में जाता है और इसलिए कुटुंब न्यायालय ने यह निश्चित मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी/पिता को प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा मंजूर करने से बच्ची के खुशगवार जीवन और अच्छे वातावरण के जीवन से विचलित (महरुम) करना होगा और इससे उसकी बढ़ोतरी और विकास पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । परिणामत: अप्राप्तवय बालक की अस्थायी अभिरक्षा के लिए अनुरोध नामंजूर कर दिया गया था । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 3 के लिए यह आवश्यक नहीं था कि दोनों के बीच स्वस्थ और सकारात्मक नातेदारी स्थापित करने के लिए उन दोनों को अंतरिम उपाय के रूप में मिलाया जाए और इसके लिए अपीलार्थी को

एक मास में दो बार अर्थात् मास के प्रथम और तीसरे शनिवार को अप्राप्तवय बालक से मिलने के लिए मुलाकात के अधिकार मंजूर किए गए । यह निदेश दिया गया है कि प्रत्येक मास के प्रथम शनिवार को भेंट करने का स्थान कुटुंब न्यायालय से सहबद्ध बालक कक्ष में रखा जाएगा और दूसरी भेंट के बारे में यह निदेश दिया गया कि यह मुलाकात गुड़गांव में होगी जहां अप्राप्तवय/प्रत्यर्थी सं. 3, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के साथ रहती है और यह स्थान पक्षकारों के लिए उपयुक्त स्थान है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर उद्धृत विनिश्चयों पर विचार करते हुए न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि मात्र इस कारण कि अपीलार्थी अप्राप्तवय बालिका अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 का पिता और नैसर्गिक संरक्षक है अथवा वह वित्तीय रूप से समृद्ध है, बच्ची की अंतरिम अभिरक्षा मंजूर करने के लिए एक सही व्यक्ति नहीं है । जहां अधिनियम, 1890 की धारा 12 या धारा 25 में से किसी के अधीन किसी आवेदन का विनिश्चय किया जाए वहां प्राथमिक विचारणा अप्राप्तवय की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थिति होगी, इसके सिवाय कुछ और नहीं । वित्तीय मानदंड के संबंध में मात्र इस कारण कि अपीलार्थी वित्तीय रूप से समृद्ध है, न्यायालय को अप्राप्तवय अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा अपीलार्थी को सुपुर्द करने के लिए मार्गदर्शक कारक नहीं हो सकता । किसी भी दशा में प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अपीलार्थी के मुकाबले बेहतर स्थिति में हैं, जहां वित्तीय समृद्धि की बात आती है । यदि स्थिति भिन्न भी होती तो भी इससे अधिक अंतर नहीं पड़ता । अत: केवल उक्त मानदंड न्यायालय को अप्राप्तवय प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा के मामले में विनिश्चय करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता । इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 के बीच गंभीर रूप से विवाद है और उन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध दांडिक मामले फाइल किए हैं, इस न्यायालय के लिए सुसंगत नहीं होगा क्योंकि ये बाह्य कारक हैं जहां न्यायालय बालक के सर्वोपरि हित और कल्याण का निर्धारण कर रहा हो । वर्तमान मामले में न्यायालय के लिए मुख्य विचारणा प्रत्यर्थी सं. 3 का एकमात्र "कल्याण" देखना है और इस पद को विस्तृत रूप से समझा जाना चाहिए । न्यायालय को इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्यर्थी सं.

3 को जहां तक संभव हो, अच्छे और शांतिपूर्ण वातावरण में अर्थात् उसकी बढ़ोतरी और विकास के लिए बेहतर वातावरण में रखा जाना चाहिए । कुटुंब न्यायालय द्वारा बच्ची से बातचीत किए जाने से संबंधित कथन का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उसका प्रत्यर्थी सं. 2/नानी और मामा श्री भालेन्द्र सिंह और अन्य मामाओं तथा उनकी पत्नियों तथा उनके बच्चों से अत्यधिक लगाव है । इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने नाना-नानी और उनके कुटुंब के सदस्यों की उपस्थिति में अधिक सुरक्षित महसूस करती है और उन सभी ने उसे शांत रखने और सांत्वना देने में भूमिका निभाई है जो कि एक माता रहित बच्ची है और इस छोटी आयु में उसे देखभाल की आवश्यकता है । न्यायालय के मतानुसार धन संबंधी स्थिति के ऊपर बच्ची की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्थिति अधिक महत्व रखती है जहां अप्राप्तवय बालिका के हित के संतुलन पर विचार किया जाए । इस आयु के किसी बालक की सुरक्षा, देखभाल और घर पर शांतिमय वातावरण और उसके संतुलित विकास के लिए कुटुंब का प्रेम और देखभाल होना बच्चे के लिए सर्वोपरि विचारणा है जिसके बारे में न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 उसे ऐसा वातावरण बेहतर तौर पर दे सकते हैं । उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय के पास इस बात के लिए कोई कारण नहीं है कि न्यायालय उस आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करे जिसके अधीन अपीलार्थी/पिता द्वारा अप्राप्तवय अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 के संबंध में अंतरिम अभिरक्षा के लिए किए गए अनुरोध को नामंजूर किया गया है । न्यायालय विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त इस मत से सहमत है कि जब तक प्रत्यर्थी सं. 3 अपने पिता अर्थात् अपीलार्थी के साथ सुपरिचित (सहज) न हो जाए, प्रत्यर्थी सं. 3 के नाना-नानी उसकी बेहतरी स्थापित करेंगे और अपने साथ लंबी अवधि तक रखकर उसके विश्वास का स्तर पर्याप्त और बेहतर तौर पर निर्मित करेंगे यदि उसे प्रत्यर्थी सं. 1 और 2/नाना-नानी की अभिरक्षा से न हटाया जाए । आक्षेपित आदेश की जिसके द्वारा अपीलार्थी को प्रत्यर्थी सं. 3 की अंतरिम अभिरक्षा देने से इनकार किया गया है, पुष्टि की जाती है । न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 के बीच

घनिष्ठता बनाने में प्रगति लाने के लिए पिता और पुत्री को मिलने की अवधि के दौरान अकेले छोड़ा जाना चाहिए । इस आशय और प्रयोजन के साथ न्यायालय तारीख 29 अप्रैल, 2017 के आक्षेपित आदेश को इस परिसीमा तक उपांतरित करता है । मुख्य आवेदन के लंबन के दौरान प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 संबंधित कुटुंब न्यायालय से सहबद्ध बालक कक्ष में प्रत्येक मास के प्रथम और तीसरे शनिवार को अप्राप्तवय-प्रत्यर्थी सं. 3 को लाएंगे और उक्त न्यायालय से संबद्ध परामर्शी अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 के बीच भेंट के दौरान मौजूद रहेंगे । आक्षेपित आदेश में यथा निहित मुलाकात के घंटे की अवधि डेढ़ घंटा अर्थात् 11.30 बजे पूर्वाह्न से 1.00 बजे अपराह्न है । यदि परामर्शी कुटुंब न्यायालय को यह बताता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 अपीलार्थी के साथ सहज है तब प्रत्येक मास के एक शनिवार को मिलने के घंटे विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा दो घंटे तक अर्थात् 11.00 बजे पूर्वाह्न से 1.00 बजे अपराह्न तक विस्तारित किए जा सकते हैं । यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर पारित किया गया आदेश पूर्ण रूप से अंतरिम प्रकृति का है और परिस्थितियों में किसी परिवर्तन की दशा में कोई भी पक्षकार इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह मिलने के अधिकारों के संबंध में उपांतरण/परिवर्तन करने के लिए पर्याप्त सामग्री के साथ समावेदन कर सकता है । उपर्युक्त अभिव्यक्त मत केवल कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश में उल्लिखित तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में व्यक्त किया गया है और इसलिए उक्त मत उक्त न्यायालय को अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए मुख्य आवेदन का अंतिम रूप से विनिश्चय करते समय प्रभावित नहीं करेगा । (पैरा 14, 29, 30, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 40, 41 और 42)

**निर्दिष्ट निर्णय**

पैरा

[2017] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 3137 =
(2017) 8 एस. सी. सी. 454 :
**नित्या आनंद राघवन** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली राज्य और अन्य** ; 28

[2017] 2017 (14) स्केल 121 :
**प्रतीक गुप्ता** बनाम **शिल्पी गुप्ता और अन्य** ; 28

[2013] 2013 (10) ए. डी. (दिल्ली) 399 :
**श्रीमती विभा** बनाम **श्री रामानंद** ; 14, 27

[2010] 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6107 = (2010) 10 एस. सी. सी. 314 :
**श्याम राव मरोती कोरवते** बनाम **दीपक किशन राव टेकम** ; 14, 26

[2009] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 732 = (2008) 9 एस. सी. सी. 413 :
**नील रतन कुंडू और एक अन्य** बनाम **अभिजीत कुंडू** ; 7, 22, 23

[2009] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2821 = (2009) 7 एस. सी. सी. 322 :
**श्रीमती अंजलि कपूर** बनाम **राजीव बैजल** ; 7, 25

[2009] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 557 = (2009) 1 एस. सी. सी. 42 :
**गौरव नागपाल** बनाम **सुमेधा नागपाल** ; 14

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2262 :
**मौसमी मोइत्रा गांगुली** बनाम **जयंती गांगुली** ; 14, 24

[2000] (2000) 9 एस. सी. सी. 745 :
**सुमेधा नागपाल** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य** ; 14

[1992] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1447 :
**कीर्तिकुमार महेशंकर जोशी** बनाम **प्रदीप कुमार करूणा शंकर जोशी** ; 14, 20

[1992] ए. आई. आर. 1992 पटना 76 :
**विमला देवी** बनाम **सुभाष चन्द्र यादव निराला** ; 14, 21

[1991] ए. आई. आर. 1991 कलकत्ता 176 :
**श्रीमती इलोकेशी चक्रवर्ती** बनाम **श्री सुनील कुमार चक्रवर्ती** ; 14, 19

[1987] [1987] 1 एस. सी. आर. 175 :
**श्रीमती एलिजाबेथ दिनशा** बनाम **अरवंद एम. दिनशा और एक अन्य** ; 14, 18

[1987] ए. आई. आर. 1987 हिमाचल प्रदेश 34 :
**कमला देवी** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** ; 14, 17

[1984] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1224 =
[1984] 3 एस. सी. आर. 422 :
**श्रीमती सुरिन्दर कौर संधू** बनाम **हरबक्श सिंह संधू और एक अन्य** ; 14, 16

[1981] ए. आई. आर. 1981 आंध्र प्रदेश 1 :
**एल. चन्द्रन** बनाम **श्रीमती वेंकटलक्ष्मी और एक अन्य** ; 14, 15

[1973] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2090 =
(1973) 1 एस. सी. सी. 840 :
**रोज़ी जैकब** बनाम **जैकब ए. चक्रमक्कल** । 7

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की वैवाहिक अपील (एफ. सी.) सं. 92.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री वाई. पी. नरूला (वरिष्ठ अधिवक्ता), नीरज कुमार झा, यश प्रकाश, ऋषिकेश झा और अभय नरूला

**प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री वी. के. गर्ग (वरिष्ठ अधिवक्ता), जिनेन्द्र जैन, (सुश्री) नूपुर दुबे, (सुश्री) एश्वर्य लक्ष्मी और चिराग

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (सुश्री) हीमा कोहली ने दिया ।

**न्या. (सुश्री) कोहली** – इस अपील में अपीलार्थी/पिता ने विद्वान् कुटुंब न्यायालय, उत्तरी, रोहिणी, दिल्ली द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 2017 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1890" कहा गया है) की धारा 12 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन का निपटान किया गया है । अपीलार्थी ने इस आवेदन में अपनी अप्राप्तवय पुत्री समरिदी सिंह जिसकी आयु 7 वर्ष और 9 मास है, की अंतरिम अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया है । आवेदन की तारीख को अप्राप्तवय को प्रत्यर्थी सं. 3 के रूप में पक्षकार बनाया गया था जो वर्तमान में हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् अपने नाना-नानी की अभिरक्षा में है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा का अनुतोष अपीलार्थी को मंजूर करने से इनकार कर दिया और इसके बजाय न्यायालय ने आवेदन में अप्राप्तवय बालिका के संबंध में एक मास में दो बार मिलने के उसके अधिकार को मंजूर करते हुए आवेदन में किए गए वैकल्पिक अनुरोध को स्वीकार कर लिया ।

2. मामले की तथ्यात्मक स्थिति का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । अपीलार्थी का प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की पुत्री प्रियंका के साथ तारीख 1 जुलाई, 2009 को हिन्दू रीतियों के अनुसार विवाह हुआ था । प्रियंका पेशे से दंत चिकित्सक थी । आरंभतः पति और पत्नी रोहिणी, दिल्ली के सेक्टर 7 में रहते थे तथापि, बाद में वे गुड़गांव स्थित प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के आवास पर रहने के लिए चले गए थे । उनके विवाह-बंधन से तारीख 9 मार्च, 2010 को एक पुत्री प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय का जन्म हुआ था । चार वर्ष के पश्चात् अपीलार्थी की पत्नी की तारीख 22 अप्रैल, 2014 को गुड़गांव स्थित मेदांता मेडिसिटी अस्पताल में मृत्यु हो गई थी । अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि उसकी पत्नी मिरगी रोग से पीड़ित थी और उसकी मृत्यु इसी कारणवश हुई थी । सितंबर, 2014 के आरंभ में अपीलार्थी और उसकी अप्राप्तवय पुत्री प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के साथ सतत् रूप से गुड़गांव में रहती रही । गुड़गांव में रहने के दौरान प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय पुत्री का जी. डी. गोयनका पब्लिक स्कूल, गुड़गांव में दाख़िला कराया गया था । सितंबर,

2014 के दूसरे सप्ताह में अपीलार्थी और उसकी पुत्री दिल्ली में एक किराए के मकान में रहने लगे । दिल्ली जाने के पश्चात् अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 3 का प्रथमत: जी. डी. गोयनका ला पेटाइट प्ले स्कूल और तत्पश्चात् पश्चिमी दिल्ली के श्रीराम ग्लोबल स्कूल और अंतत: किन्दरगारटन दिल्ली स्थित जी. डी. गोयनका पब्लिक स्कूल में दाख़िला कराया गया था ।

3. अपीलार्थी ने यह दावा किया है कि उसकी पुत्री की गर्मियों की छुट्टी के दौरान वे दोनों तारीख 25 जून, 2015 को हरियाणा के जींद शहर में रह रहे उसके मामा से मिलने गए थे । जब वह प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ दिल्ली के लिए जाने वाला था तो प्रत्यर्थी सं. 1 और उसके नातेदार तथा सहायक उसके मामा के मकान पर आए और बलपूर्वक उसकी अप्राप्तवय पुत्री को छीन लिया ।

4. यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा उपर्युक्त प्रकथनों से इनकार किया गया है तथापि, उनका यह पक्षकथन है कि अप्रैल, 2014 में उनकी पुत्री की मृत्यु के पश्चात् उनकी अप्राप्तवय नवासी प्रत्यर्थी सं. 3 लगभग 6-7 माह तक लगातार उनके साथ रही और एक दिन उनकी अनुपस्थिति में अपीलार्थी यह मिथ्या बहाना करके उसे ले गया था कि वह सायं में उसे वापस भेज देगा । तथापि, अपीलार्थी ने ऐसा नहीं किया और उसने अप्राप्तवय के नाना-नानी से ताल्लुक खत्म कर दिए । कई मासों तक अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 के बारे में तलाश करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को यह पता चला कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 जींद में अपने एक नातेदार के मकान में रह रहे हैं । जब तारीख 27 जून, 2015 को प्रत्यर्थी सं. 1 कतिपय सम्मानित व्यक्तियों के साथ वहां पहुंचा तो उनसे गाली-गलौज किया गया और अपीलार्थी तथा उसके नातेदारों ने धमकियां दीं । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 अपनी नवासी को अपने साथ ले आया । घटनास्थल पर अपीलार्थी ने 100 नम्बर पर पुलिस को बुलाया और उसके कहने पर उसी दिन भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 452, 363, 506, 147 और 149 के अधीन अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2015 को प्रत्यर्थी सं. 1,

अप्राप्तवय पुत्री को विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, जींद के समक्ष पेश किया गया था और न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अप्राप्तवय का कथन अभिलिखित किया था । प्रत्यर्थी सं. 3 ने मजिस्ट्रेट के समक्ष यह कहा कि वह अपने नाना-नानी के साथ रहना चाहती है । प्रत्यर्थियों द्वारा अपने जवाब के साथ विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, जींद द्वारा अभिलिखित उक्त कथन की एक प्रति पेश की गई है ।

5. इसके पश्चात् अपीलार्थी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 का आश्रय लेते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष 2015 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 111 फाइल की जिसमें उसने अपनी अप्राप्तवय पुत्री की अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया । तथापि, अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा तारीख 27 जुलाई, 2015 को उक्त याचिका यह कहते हुए वापस ले ली गई थी कि पक्षकारों के बीच उनके शुभचिन्तकों की सहायता से परस्पर मामला सुलझा लिया गया है । अपीलार्थी ने फरवरी, 2016 में विद्वान् कुटुंब न्यायालय, रोहिणी के समक्ष अधिनियम की धारा 25 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । यह आवेदन 2017 का आवेदन सं. 1 है । उक्त आवेदन के साथ प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय को पेश करने के लिए और उसकी अंतरिम अभिरक्षा प्राप्त करने के लिए एक अंतरिम आवेदन पेश किया गया था जिसे न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की पुत्री को एक मास में दो बार मिलने के अधिकारों को मंजूर करते हुए आक्षेपित आदेश द्वारा निपटा दिया गया था । तथापि, न्यायालय ने पुत्री की अंतरिम अभिरक्षा की मंजूरी के लिए उसके अनुरोध को खारिज कर दिया था ।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री वाई. पी. नरूला ने इस आधार पर आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय इस तथ्य का मूल्यांकन करने में विफल रहा है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं. 3/अवस्यक बालिका का पिता और नैसर्गिक संरक्षक होने के नाते उसकी अभिरक्षा प्राप्त करने के लिए बेहतर स्थिति रखता है ; अपीलार्थी समाज में बेहतर तौर पर स्थापित है और बालिका का भरणपोषण करने के लिए भौतिक और वित्तीय रूप से सक्षम है और यह बात इस तथ्य से उपदर्शित होती है कि उसने बालिका का दिल्ली के

विख्यात विद्यालय में दाखिला कराया था ; विद्वान् कुटुंब न्यायालय इस तथ्य का भी मूल्यांकन करने में असफल रहा है कि इस अवधि के दौरान प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय बालिका को प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 तथा उनके कुटुंब के अन्य सदस्यों द्वारा 3 वर्ष की अवधि से सतत् रूप से सिखाया-पढ़ाया जा रहा है और अपीलार्थी को अपनी पुत्री को देखने के लिए कभी-भी अनुज्ञात नहीं किया गया और इसी कारण से उस समय जब उसे तारीख 22 अप्रैल, 2017 को कुटुंब न्यायालय के समक्ष पेश किया गया, उसने इस प्रकार की प्रतिक्रिया दी ; प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी के विरुद्ध अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित करते हुए एक मिथ्या शिकायत करने का प्रयास किया था कि उसने अपनी पत्नी की हत्या की थी और जब पुलिस द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत नहीं की गई तो उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन एक प्राइवेट परिवाद फाइल किया था, जिसे विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गुड़गांव द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2017 को खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी की ओर से यह भी दलील दी गई है कि उपर्युक्त सभी कारक प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के आचरण से प्रदर्शित होते हैं जो उन्हें प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय बालिका को अपनी अभिरक्षा में रखने के लिए हकदार नहीं बनाते । विद्वान् काउंसेल ने बल देते हुए यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 असरदार व्यक्ति हैं क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 1 का भाई संसद् सदस्य है और अपीलार्थी को यह आशंका है कि अपीलार्थी को बालिका के फायदे और कल्याण के लिए दिल्ली में स्थानांतरित करने से रोका जाएगा ।

7. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री वी. के. गर्ग ने उपर्युक्त दलीलों का प्रतिरोध करते हुए प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के विरुद्ध अपीलार्थी द्वारा किए गए प्रत्येक अभिकथन को विवादित किया है । उन्होंने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 3/बालिका का अपने नाना-नानी के साथ गहरा भावनात्मक लगाव है क्योंकि वह अपने जन्म से और उसके पश्चात् भी लगातार उनके साथ रह रही है ; प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा अप्राप्तवय बालिका को अपीलार्थी के विरुद्ध सिखाने-पढ़ाने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है और यह बात तारीख 1 जुलाई,

2015 को न्यायिक मजिस्ट्रेट, जींद के समक्ष अभिलिखित उसके कथन से स्पष्टतया उपदर्शित होती है और उसके पश्चात् उपर्युक्त बालिका 6 मास से अधिक की अवधि तक अपीलार्थी की अभिरक्षा में रही थी । यह कहा गया है कि अप्राप्तवय बालिका की अपीलार्थी को अंतरिम अभिरक्षा मंजूर करने में बेहतर हित नहीं है और कुटुंब न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश ने बालिका से वैयक्तिक रूप से पूछताछ की थी और आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व इस पहलू के ऊपर उसकी पसंद के बारे में पूछा था । बालिका से बातचीत के दौरान प्रत्यर्थी सं. 3/अप्राप्तवय बालिका ने निश्चित निबंधनों में विद्वान् कुटुंब न्यायालय के न्यायाधीश के समक्ष यह कहा था कि वह प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 तथा अपने मामाजी के साथ ही रहना चाहती है । अत: यह दलील दी गई है कि वर्तमान अपील में कोई बल न होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है और इसलिए आक्षेपित आदेश की पुष्टि की जाए । उन्होंने अपनी दलील में यह कहा है कि जब न्यायालय द्वारा अभिरक्षा मामलों पर विचार किया जाए तो न्यायालय को किसी अप्राप्तवय की अभिरक्षा पर विचार करते हुए केवल बच्चे के कल्याण और बेहतरी पर ही ध्यान देना चाहिए । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों को उद्धृत किया है :-

(1) **रोज़ी जैकब** बनाम **जैकब ए. चक्रमक्कल**[1] ;

(2) **नील रतन कुंडू और एक अन्य** बनाम **अभिजीत कुंडू**[2] ;

(3) **श्रीमती अंजलि कपूर** बनाम **राजीव बैजल**[3] ;

8. हमने दोनों पक्षों द्वारा दी गई दलीलों को सुना और आक्षेपित निर्णय, फाइल किए गए अभिवचनों और दस्तोवजों का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया तथा हमने हमारे समक्ष उद्धृत निर्णयों की भी परीक्षा की ।

9. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक

---

[1] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2090 = (1973) 1 एस. सी. सी. 840.

[2] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. (सप्ली.) 732 = (2008) 9 एस. सी. सी. 413.

[3] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2821 = (2009) 7 एस. सी. सी. 322.

है कि विधि की स्थिति की परीक्षा की जाए । अधिनियम, 1890 की विधि को संरक्षक और प्रतिपाल्य के संबंध में समेकित और संशोधित किया गया है । अधिनियम की धारा 4 जो कि परिभाषा खंड है, "अप्राप्तवय" पद को ऐसे किसी व्यक्ति के रूप में परिभाषित करती है जिसने भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 के उपबंधों के अधीन वयस्कता प्राप्त न की हो ; "संरक्षक" पद को ऐसे किसी व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो किसी अप्राप्तवय की या उसकी सम्पत्ति की या अप्राप्तवय और उसकी संपत्ति दोनों की देखभाल करने वाला हो ; "प्रतिपाल्य" पद को ऐसे किसी अप्राप्तवय के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके लिए या जिसकी संपत्ति के लिए या दोनों के लिए कोई संरक्षक है ।

10. अधिनियम, 1890 का अध्याय 2 संरक्षकों की नियुक्ति और घोषणा के बारे में उपबंध करता है । अध्याय 2 के अंतर्गत आने वाली धारा 7 न्यायालय को संरक्षकता के बारे में आदेश करने के लिए सशक्त करती है । निर्देश के लिए उक्त उपबंध यहां उद्धृत किया जा रहा है :-

> "7. **संरक्षकता के बारे में न्यायालय का आदेश करने की शक्ति** - (1) जहां कि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अप्राप्तवय का इसमें कल्याण है कि -
>
> (क) उसके शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने वाला, अथवा
>
> (ख) किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षक घोषित करने वाला,
>
> आदेश किया जाए, वहां न्यायालय तद्नुसार आदेश कर सकेगा ।
>
> (2) इस धारा के अधीन दिए गए आदेश से यह विवक्षित होगा कि कोई भी संरक्षक, जो विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, हटा दिया गया है ।
>
> (3) जहां कि कोई संरक्षक विल या अन्य लिखत द्वारा

नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने का इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक पूर्वोक्त नियुक्त या घोषित संरक्षक की शक्तियां इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन परिविरत न हो गई हों ।"

11. धारा 8 उन व्यक्तियों के बारे में अधिकथित करती है जो संरक्षकता हेतु किसी आदेश के लिए आवेदन करने के हकदार हैं । धारा 9 यह विनिर्दिष्ट करती है कि किस न्यायालय को अप्राप्तवय की संरक्षकता के संबंध में किसी आवेदन को ग्रहण किए जाने की अधिकारिता होगी । धारा 17 उन मामलों के बारे में उपबंध करती है जिन पर न्यायालय को किसी संरक्षक की नियुक्ति करते समय विचार किया जाना चाहिए और यह चीज महत्वपूर्ण है । उक्त उपबंध यहां उद्धृत किया जा रहा है :-

"17. **संरक्षक नियुक्त करने में न्यायालय द्वारा विचारणीय बातें** - (1) अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित करने में इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय उस विधि से संगत, जिसके अप्राप्तवय अध्यधीन है, उस बात से मार्गदर्शित होगा, जो उन परिस्थितियों में अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्रतीत हो ।

(2) यह विचार करने में कि अप्राप्तवय के लिए क्या कल्याणकर होगा, न्यायालय अप्राप्तवय की आयु, लिंग और धर्म, प्रस्थापित संरक्षक शील और सामर्थ्य तथा अप्राप्तवय से रक्त संबंध में उसकी निकटता, मृत जनक की इच्छाओं को, यदि कोई हों और अप्राप्तवय से या उसकी सम्पत्ति से प्रस्थापित संरक्षक के किसी वर्तमान या पूर्वतम संबंधों को ध्यान में रखेगा ।

(3) यदि अप्राप्तवय इतनी आयु का है कि वह बुद्धिमत्तापूर्ण अधिमान कर सकता है तो न्यायालय उस अधिमान पर विचार कर सकेगा ।

(4) * * * * *

(5) न्यायालय किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध संरक्षक नियुक्त या घोषित नहीं करेगा ।"

12. एक अन्य कानून भी है जो हिन्दुओं में वयस्कता और सरंक्षकता के संबंध में है और वह हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम, 1956' कहा गया है) है । उक्त अधिनियमिति की धारा 4 "अप्राप्तवय" को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करती है जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है । "संरक्षक" पद को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो अप्राप्तवय या उसकी संपत्ति या दोनों की देखभाल और उसके शरीर और संपत्ति की देखभाल करता हो और इसमें नैसर्गिक संरक्षक सम्मिलित है । "नैसर्गिक संरक्षक" से ऐसा कोई संरक्षक अभिप्रेत है जिसका उल्लेख अधिनियम की धारा 6 में किया गया है और जो इस प्रकार है :-

"6. **हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक** - हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक अप्राप्तवय के शरीर के बारे में और (अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर) उसकी सम्पत्ति के बारे में भी, निम्नलिखित हैं -

(क) किसी लड़के या अविवाहिता लड़की की दशा में पिता और उसके पश्चात् माता ; परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी ;

(ख) अधर्मज लड़के या अधर्मज अविवाहिता लड़की की दशा में-माता और उसके पश्चात् पिता ;

(ग) विवाहिता लड़की की दशा में-पति :

परन्तु कोई भी व्यक्ति यदि -

(क) वह हिन्दू नहीं रह गया है ; या

(ख) वह वानप्रस्थ या पति या सन्यासी होकर संसार को पूर्णतः और अन्तिम रूप से त्याग चुका है,

तो इस धारा के उपबंधों के अधीन अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य करने का हकदार न होगा ।"

13. अधिनियम, 1956 की धारा 8 नैसर्गिक संरक्षक की शक्तियों को अधिकथित करती है । धारा 13 जिसका इस मामले से संबंध है, यह उपबंधित करती है कि किसी अप्राप्तवय का कल्याण सर्वोपरि विचारणा है । उक्त उपबंध निर्देश के लिए यहां उद्धृत किया जाता है :-

"13. **अप्राप्तवय का कल्याण सर्वोपरि होगा** - (1) न्यायालय द्वारा किसी भी व्यक्ति के किसी हिन्दू अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जाने में अप्राप्तवय के कल्याण पर सर्वोपरि ध्यान रखा जाएगा ।

(2) यदि किसी भी व्यक्ति के विषय में न्यायालय की यह राय हो कि उसके संरक्षक होने में अप्राप्तवय का कल्याण न होगा तो वह व्यक्ति इस अधिनियम के उपबंधों के आधार पर या ऐसी किसी भी विधि के आधार पर, जो हिन्दुओं में विवाहार्थ संरक्षकता के बारे में हो, संरक्षकता का हकदार न होगा ।"

14. 1890 के अधिनियम और 1956 के अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने पर यह स्पष्टतया उपदर्शित होता है कि किसी अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा से संबंधित मामला एक ऐसी महत्वपूर्ण विचारणा है जिसको न्यायालय द्वारा "अप्राप्तवय के कल्याण" की परीक्षा करते समय महत्व देना चाहिए और उक्त पद को इसके वृहत्त अर्थ में लागू किया जाना चाहिए । किसी अप्राप्तवय के संरक्षक के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति करने या घोषणा करने का माता-पिता को या नातेदारों को अधिकार नहीं है और यह अधिकार न्यायालय से संबंधित है । महत्वपूर्ण विचारणा यह है कि अप्राप्तवय बालक का कल्याण देखा जाए । उपर्युक्त पहलू को उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के विभिन्न न्याय-निर्णयों में अनेक वर्षों से सतत् रूप से बल दिया गया है और इन निर्णयों में **रोज़ी जैकब** (पूर्वोक्त) ; **एल. चन्द्रन** बनाम **श्रीमती वेंकटलक्ष्मी और एक अन्य**[1] ; **श्रीमती**

---

[1] ए. आई. आर. 1981 आंध्र प्रदेश 1.

**सुरिन्दर कौर संधू** बनाम **हरबक्श सिंह संधू और एक अन्य**[1] ; **कमला देवी** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य**[2] **श्रीमती एलिजाबेथ दिनशा** बनाम **अरवंद एम. दिनशा और एक अन्य**[3] **श्रीमती इलोकेशी चक्रवर्ती** बनाम **श्री सुनील कुमार चक्रवर्ती**[4] ; **कीर्तिकुमार महेशंकर जोशी** बनाम **प्रदीप कुमार करूणा शंकर जोशी**[5] ; **विमला देवी** बनाम **सुभाष चन्द्र यादव निराला**[6] ; **सुमेधा नागपाल** बनाम **दिल्ली राज्य और अन्य**[7] ; **नील रतन कुंडू** (पूर्वोक्त) ; **मौसमी मोइत्रा गांगुली** बनाम **जयंती गांगुली**[8] ; **श्रीमती अंजलि कपूर** (पूर्वोक्त) ; **गौरव नागपाल** बनाम **सुमेधा नागपाल**[9] ; **श्याम राव मरोती कोरवते** बनाम **दीपक किशन राव टेकम**[10] और **श्रीमती विभा** बनाम **श्री रामानंद**[11] वाले मामले सम्मिलित हैं ।

15. **एल. चन्द्रन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में जहां अप्राप्तवय की माता की मृत्यु हो गई थी और उसने अप्राप्तवय को उसकी नानी की देखभाल और अभिरक्षा में छोड़ा था, पिता द्वारा बालक की अभिरक्षा के लिए न्यायालय में समावेदन करने पर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने पिता की इस दलील को नामंजूर कर दिया था कि चूंकि वह बालक का नैसर्गिक संरक्षक है इसलिए उसे बालक के नाना-नानी के ऊपर अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के लिए असीमित अधिकार उपलब्ध हैं । उक्त मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया था :–

"19. अब यह बात सार्वभौम रूप से सुनिश्चित हो चुकी है कि

---

[1] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1224 = [1984] 3 एस. सी. आर. 422.

[2] ए. आई. आर. 1987 हिमाचल प्रदेश 34.

[3] [1987] 1 एस. सी. आर. 175.

[4] ए. आई. आर. 1991 कलकत्ता 176.

[5] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1447.

[6] ए. आई. आर. 1992 पटना 76.

[7] (2000) 9 एस. सी. सी. 745.

[8] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2262.

[9] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 557 = (2009) 1 एस. सी. सी. 42.

[10] 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6107 = (2010) 10 एस. सी. सी. 314.

[11] 2013 (10) ए. डी. (दिल्ली) 399.

राज्य बालकों के कल्याण के विरुद्ध अपनी कानूनी संरक्षक संबंधी अधिकारिता से संबंधित अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा । सकारात्मक रूप से कहते हुए यह कहा जा सकता है कि यह अधिकारिता केवल बालक की प्रोन्नति और कल्याण के लिए है । अतः हमारा यह स्पष्ट मत है कि याची की ओर से दी गई प्रथम दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता । तथापि, हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान मामले में अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के लिए पिता के दावे को खारिज करने में हम किसी भी प्रकार से अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के लिए पिता के विधिक अधिकारों को कम करने या प्रभावित करने के लिए आशयित नहीं हैं । पैतृक अधिकारों का आसानी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है । सामान्यतया ऐसा कुछ नहीं है जिसे पिता और माता अपने बालक के हितों की वृद्धि और संरक्षण के लिए न कर सकें । अप्राप्तवय बालकों के हितों में आत्म-त्याग के बेहतरहीन प्रयास हिन्दू कुटुंब की प्रणाली में सम्मिलित हैं । महान मुगल बाबर के बारे में यह कहा गया है कि उसने अपने पुत्र हुमायूं को बचाने के लिए गंभीर रोग के प्रभाव को कम करने के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी मृत्यु का आह्वान किया । अतः हम बालक के कल्याण के लिए पिता की अभिरक्षा के संबंध में विरोधी विचार व्यक्त नहीं करते । हम केवल याची द्वारा बताए गए अनन्य सिद्धांत को खारिज करते हैं । जैसाकि हाउस आफ़ लार्ड के लार्ड मैक डरमोट ने जे. **बनाम** सी. (1969) 1 आल. ई. आर. 788 वाले मामले के विनिश्चय में मत व्यक्त किया है –

> 'जहां इस बारे में विधि का कोई नियम मौजूद नहीं है कि वास्तविक माता-पिता के अधिकार और अभिलाषाएं अन्य विचारणाओं के ऊपर अभिभावी होनी चाहिए क्योंकि ऐसे अधिकार और अभिलाषाएं प्रकृति और समाज द्वारा दी गई मानी गई हैं, वहां किसी विशेष रीति में बालक के सम्पूर्ण कल्याण को प्रदत्त करना संभव हो सकता है और इसलिए इन्हें अनेक मामलों में प्रधानता दी जानी चाहिए । यद्यपि

माता-पिता के अधिकार विद्यमान रहते हैं तथापि, अन्वेषण के प्रयोजन के लिए आत्यंतिक नहीं होते..... ।'

अत: हम वर्तमान मामले में पिता द्वारा दी गई एकमात्र आत्यंतिक दलील को खारिज करते हैं ।"

16. उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती सुरिन्दर कौर संधू** (पूर्वोक्त) वाले मामले में 1956 के अधिनियम पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि यद्यपि धारा 6 पिता को अप्राप्तवय बालक के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में परिभाषित करती है तथापि, उक्त उपबंध उस महत्वपूर्ण विचारणा पर जो अप्राप्तवय के कल्याण के लिए सहायक है, अभिभावी नहीं हो सकता ।

17. हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने **कमला देवी** (पूवोक्त) वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :-

"13. जैसाकि पूर्व में मत व्यक्त किया गया है, न्यायालय अपनी अन्तर्निहित और सामान्य अधिकारिता में बालक की अभिरक्षा के मामलों को विनिश्चित करते समय मात्र माता-पिता या संरक्षक के विधिक अधिकार द्वारा आबद्ध नहीं है । यद्यपि विशेष कानूनों के उपबंधों को जो माता-पिता या संरक्षकों के अधिकारों को विनियमित करते हैं, विचार में लिया जा सकता है तथापि, ऐसा कुछ नहीं है जो ऐसे मामलों में न्यायालय को उसकी कानूनी संरक्षक नियुक्त करने संबंधी अधिकारिता का प्रयोग करने में बाधक बन सकता हो और ऐसे मामलों में ऐसी परिस्थितियों को महत्व दिया जाना चाहिए जो कि बालक के लिए सामान्यतया सुविधाजनक, उपयुक्त, प्रज्ञापूर्ण, नैतिक और भौतिक विकास, उसके स्वास्थ्य, शिक्षा और सामान्य भरणपोषण के लिए तथा संबद्ध परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हों । न्यायालय को ऐसे मामलों को अन्तत: बालक के बेहतर हितों को दृष्टिगत करते हुए विनिश्चित करना चाहिए और बालकों के कल्याण के लिए यह अपेक्षित है कि उन्हें माता-पिता में से किसी एक या किसी अन्य की अभिरक्षा में दिया जाए ।"

18. उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती एलिजाबेथ दिनशा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि जहां न्यायालय के समक्ष अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा से संबंधित प्रश्न उद्भूत होते हैं वहां मामले का विनिश्चय पक्षकारों के विधिक अधिकारों पर विचार न करते हुए इस एकमात्र महत्वपूर्ण मानदंड के आधार पर करना चाहिए कि बालक का बेहतर हित और कल्याण कैसे पूरा होगा । अत: केवल पिता की उपयुक्तता अप्राप्तवय बालक के कल्याण के लिए एक संपूर्ण विचारणा के रूप में नहीं माना जा सकता ।

19. कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **श्रीमती इलोकेशी चक्रवर्ती** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिनियम, 1890 की धारा 7, 12 और 25 के उपबंधों की परीक्षा करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि भले ही बालक किसी ऐसे व्यक्ति की अभिरक्षा में हो जिसे अभिरक्षा में रखने का विधिक अधिकार नहीं है तथापि, वह ऐसी रीति में उचित रूप से बालक के कल्याण की देखभाल कर रहा हो, जैसीकि उसे करनी चाहिए तब अप्राप्तवय का विधिक संरक्षक अपने विधिक अधिकार या वित्तीय सम्पन्नता के आधार पर अप्राप्तवय को लौटाने के लिए अथवा अभिरक्षा की वापसी के लिए दावा नहीं कर सकता ।

20. **कीर्ति कुमार महेशंकर जोशी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में भी अप्राप्तवय की माता की अनैसर्गिक मृत्यु हो गई थी और उसका पिता भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन आरोप का सामना कर रहा था और बालक अपने मामा के साथ रह रहे थे और जब पिता ने उनकी अभिरक्षा चाही तो उच्चतम न्यायालय ने बालकों द्वारा अपने मामा के साथ रहने की इच्छा व्यक्त करने पर न कि अपने पिता के नैसर्गिक संरक्षक होने के आधार पर बालकों से बातचीत के आधार पर और उसके अनुरोध को नामंजूर कर दिया था ।

21. पटना उच्च न्यायालय ने **विमला देवी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस तथ्य पर बल दिया था कि कानून के अधीन परिभाषित 'कल्याण' पद का अर्थ वृहत अर्थों में लिया जाना चाहिए और न्यायालय को बालक के भौतिक कल्याण के साथ बालक के व्यावहारिक और नैतिक कल्याण को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

22. **नील रतन कुंडू** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अप्राप्तवय बालक की माता की नैसर्गिक मृत्यु हो गई थी और उसके पिता पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन आरोप के लिए मामला चल रहा था, इसे दृष्टिगत करते हुए बालक की अभिरक्षा अपीलार्थी को न देकर उसके नाना-नानी को प्रदत्त की गई थी । जब प्रत्यर्थी-पिता ने जमानत पर छूटने के पश्चात् अधिनियम, 1890 के अधीन अपने अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के लिए अनुरोध करते हुए आवेदन फाइल किया तो विचारण न्यायालय ने उक्त आवेदन मंजूर कर लिया । बालक के नाना-नानी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष समावेदन किया किंतु उनकी अपील खारिज कर दी गई थी । बालक के नाना-नानी द्वारा उक्त आदेश को उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने अंग्रेजी विधि और अमरीकन विधि में अधिकथित विधिक स्थिति की परीक्षा करने और भारतीय न्यायालयों के विधिक न्यायिक निर्णयों का विश्लेषण करने के पश्चात्, जहां अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा की मंजूरी से संबंधित सिद्धांतों के प्रवर्तन को ध्यान में रखते हुए और बालक से संबंधित सर्वोपरि विचारणा को दृष्टिगत करते हुए लागू किया गया था, उक्त अपील मंजूर कर ली और अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के अनुरोध के लिए पिता का आवेदन खारिज कर दिया ।

23. उच्चतम न्यायालय ने **नील रतन कुंडू** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि ऐसे मामलों में जहां किसी अप्राप्तवय बालक के लिए कोई संरक्षक नियुक्त किया गया है, वहां यह "नकारात्मक परीक्षा" नहीं है कि पिता अपने पुत्र या पुत्री की अभिरक्षा के लिए "अनुपयुक्त" है या "अर्हित" नहीं है जो कि सुसंगत है, तथापि, "सकारात्मक परीक्षा" यह है कि ऐसी अभिरक्षा अप्राप्तवय के कल्याण में होनी चाहिए, जो कि तात्विक है और इस आधार पर न्यायालय को पिता, माता या किसी अन्य संरक्षक के हक में बालक की अभिरक्षा मंजूर करने या इनकार करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए । उपर्युक्त विनिश्चय इस तथ्य पर बल देता है कि बच्चे "सम्पत्ति" या कोई "वस्तु" नहीं हैं और उनकी अभिरक्षा से संबंधित विवाद्यकों पर

प्रेम, लगाव, भावनाओं को दृष्टिगत करते हुए विचार किया जाना चाहिए और समस्या के हल के लिए मानवीय मूल्यों को लागू किया जाना चाहिए ।

24. उच्चतम न्यायालय ने **मौसमी मोइत्रा गांगुली** (पूर्वोक्त) वाले मामले में किसी अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा से संबंधित विधि के सिद्धांतों को निम्नलिखित शब्दों में दोहराया था :-

> "14. किसी अप्राप्तवय बालक की अभिरक्षा के संबंध में विधि के सिद्धांत सुस्थापित हैं । यह दोहराया जा सकता है कि इस प्रश्न का निर्धारण करते समय कि कौन से माता-पिता को किसी बच्चे की देखभाल और नियंत्रण करना चाहिए, प्रथम और सर्वोपरि विचारणा बालक का कल्याण और हित है न कि किसी कानून के अधीन माता-पिता के अधिकार । निस्संदेह संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 17 या हिन्दू अप्राप्तवय और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 13 किसी में भी उल्लिखित बालक की अभिरक्षा से संबंधित विधि के उपबंध बालक के कल्याण को सर्वोपरि विचारणा के रूप में अधिकथित करते हैं । तथ्यत: इस विषय पर किसी कानून की उपेक्षा नहीं की जा सकती या अनदेखी नहीं की जा सकती अथवा अप्राप्तवय कल्याण के महत्वपूर्ण कारक को भुलाया नहीं जा सकता । अप्राप्तवय बालक के कल्याण के प्रश्न पर सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए विचार किया जाएगा । प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर विनिश्चित किया जाएगा और अन्य विनिश्चित मामलों को, जहां तक मामले के तथ्यात्मक पहलुओं का संबंध है, आबद्धकर पूर्व निर्णयों के रूप में लागू नहीं किया जा सकता । निस्संदेह यह सही है कि कानूनों द्वारा पिता को बालक के कल्याण की देखभाल के लिए बेहतर और उपयुक्त माना जाता है जो कि सामान्यतया कुटुम्ब का कृत्यकारी सदस्य और मुखिया होता है, तथापि, न्यायालय को प्रत्येक मामले में बालक या बालिका की अभिरक्षा के प्रश्न का अवधारण करने में प्राथमिक रूप से बालक के कल्याण को सुनिश्चित करना चाहिए । माता-पिता में से किसी के भी बेहतर

वित्तीय साधन और बालक के लिए उनके प्रेम को एक सुसंगत विचारणा के रूप में माना जा सकता है तथापि बालक की अभिरक्षा के लिए यह एकमात्र अवधारण कारक नहीं हो सकता । न्यायालय का यह महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह बालक के कल्याण को ध्यान में रखकर सभी सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग बालक के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण विचारणा को ध्यान में रखकर करे ।"

25. उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती अंजलि कपूर** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि वह सिद्धांत जिस पर न्यायालय को संरक्षक की उपयुक्तता को विनिश्चित करना चाहिए, मुख्यतया दो कारकों पर आधारित है – (i) संरक्षक बनाए जाने के लिए पिता की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता, और (ii) अप्राप्तवयों का हित । वर्तमान मामले में बच्चे के कल्याण पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि बच्चे मात्र जंगम (चल) संपत्ति नहीं हैं और न ही वे अपने माता-पिता के हाथों खेलने की वस्तु मात्र हैं । आधुनिक परिवर्तित सामाजिक शर्तों में उनके बच्चों के भविष्य और जीवन के ऊपर माता-पिता के आत्यंतिक अधिकारों की घोषणा मानवीय आधारों पर उनके कल्याण पर विचार करने के लिए होती है जिससे कि वे सामान्य संतुलित रीति में बढ़े-पलें और समाज के उपयोगी सदस्य बनें । उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में आगे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"26. साधारणतया संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन बच्चे के नैसर्गिक संरक्षकों को बच्चे की अभिरक्षा के लिए अधिकार प्राप्त होते हैं, तथापि, ऐसा अधिकार आत्यंतिक अधिकार नहीं है और इसलिए न्यायालयों से यह प्रत्याशित है कि वे अप्राप्तवय बच्चे के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण विचारणाओं को ध्यान में रखें । बच्चा लंबे समय तक अपीलार्थी-नानी के साथ रहा है और वह उस वातावरण में ठीक प्रकार से बढ़ा-पला है जो उसके विकास के लिए आवश्यक है । इस प्रक्रम पर यह उचित नहीं होगा कि उसे उस पर्यावरण से हटाया जाए जिसमें वह बढ़ा-पला है ।

अत: यह वांछनीय है कि अपीलार्थी को बच्चे की अभिरक्षा बनाए रखना अनुज्ञात किया जाए ।"

26. उच्चतम न्यायालय ने **श्याम राव मरोती कोरवते** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि इस प्रश्न का विनिश्चय करते समय कि क्या पिता, जो अन्यथा अप्राप्तवय बच्चे का नैसर्गिक संरक्षक है, संरक्षक नियुक्त किए जाने के लिए उपयुक्त या अनुपयुक्त है क्योंकि "अप्राप्तवय बालक के कल्याण" के लिए सर्वोपरि विचारणा को ध्यान में रखना होगा और ऐसे किसी प्रश्न का विनिश्चय मात्र विधि के अधीन पक्षकारों के अधिकारों के आधार पर नहीं किया जा सकता ।

27. दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **श्रीमती विभा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में निम्नलिखित विचारणाओं को निर्दिष्ट किया था जो संरक्षकता न्यायालय द्वारा उस मामले में किसी अप्राप्तवय बालक के कल्याण के लिए अवधारण किए जाने हैं :-

"6. विचारण न्यायालय ने दलीलों पर विचार करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **श्याम राव मरोती कोरवते** (पूर्वोक्त) वाले मामले के विनिश्चय का उल्लेख किया और उस विधिक स्थिति का विश्लेषण किया जो संरक्षकता न्यायालय ने निम्नलिखित रीति में विचार करते हुए उल्लेख किया था -

'17. अप्राप्तवय बालक के कल्याण के लिए न्यायिक निर्णयों के आधार पर निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांत बनाए जाने की आवश्यकता है जिनका संक्षेप में नीचे उल्लेख किया जा रहा है -

(i) कहां बालक अधिक प्रसन्न रहेगा ।

(ii) अवयस्क के भौतिक और मानसिक विकास से संबंधित देखभाल करने के लिए कौन अधिक बेहतर स्थिति में है ।

(iii) कौन अधिक सुविधाएं प्रदान कर सकता है ।

(iv) किसकी देखभाल में अप्राप्तवय का कल्याण अधिक सुरक्षित है ।

(v) कौन बालक को बेहतर शिक्षा प्रदान करने के लिए और बालक की अधिकतर समय देखभाल करने की स्थिति में है ।

(vi) उस समय कौन बालक के लिए उपलब्ध होगा जब बालक को आवश्यकता होगी ।

(vii) कौन बालक के भावनात्मक पहलू, सामाजिक उपयुक्तता, बेहतर शिक्षा, और भविष्य निर्माण के लिए और बालक को बेहतर व्यक्ति बनाने के लिए उपयुक्त होगा ।

(viii) कहां बालक के बढ़ने-पलने और उसके सम्पूर्ण विकास के लिए उपयुक्त वातावरण होगा ।

(ix) कहां बालक मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखते हुए और बेहतर भारतीय नागरिक बनाने के लिए ठीक प्रकार से विकसित हो सकता है ।

(x) कहां अप्राप्तवय बेहतर आचार-विचार रखने के लिए उचित मानवीय मूल्यों को विकसित कर सकता है और कहां प्रतिकूल विचार न उत्पन्न हों और उसके प्रतिपाल्य जीवन की ठीक प्रकार से देखभाल हो ।'"

28. **नित्या आनंद राघवन** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली राज्य और अन्य**[1] वाले मामले के एक अद्यतन विनिश्चय में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने एक ऐसे मामले में जहां अपीलार्थी-माता ने अप्राप्तवय पुत्री को पेश करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट को आक्षेपित किया था और जहां अप्राप्तवय को विदेश से पिता/प्रत्यर्थी की अभिरक्षा से हटाकर भारत लाया गया था, आक्षेपित निर्णय को उलट दिया और इस विधिक स्थिति को दोहराया कि भारतीय न्यायालय पूर्ण रूप से 1890 के अधिनियम के उपबंधों से विनियमित होते हैं । इस बात पर बल दिया गया था कि

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 3137 = (2017) 8 एस. सी. सी. 454.

सदैव ही अप्राप्तवय बालक के हित और कल्याणा को अभिभावी विचारणा के रूप में माना जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय द्वारा **प्रतीक गुप्ता** बनाम **शिल्पी गुप्ता और अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित शब्दों में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया गया है :–

> "34. यह सतत् रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रतिपाल्य से संबंधित अधिकारिता में ऐसा कोई सुविधाजनक मानदंड नहीं है जो प्राथमिक रूप से यह बताता हो कि न्यायनिर्णयन के मामलों में यह बाध्यता है कि बालक के अनारक्षित कल्याण को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण विचारणा मौजूद है ।"

29. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा केवल अपीलार्थी द्वारा अधिनियम, 1890 की धारा 12 के अधीन फाइल किए आवेदन का निपटान किया है जो अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया था । कुटुंब न्यायालय द्वारा अभी भी मुख्य अर्जी का न्यायनिर्णयन किया जाना है । अपीलार्थी ने अपने अंतरिम आवेदन में प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा के लिए प्रथम अनुतोष मांगा था और उसने वैकल्पिक अनुरोध नियमित अंतरालों के साथ अपनी अप्राप्तवय बच्ची के संबंध में उससे मिलने के अधिकारों के लिए किया है ।

30. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को तारीख 22 अप्रैल, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 3 को न्यायालय में पेश करने के लिए निदेश दिया गया था और उन्होंने निदेश का पालन किया था । कुटुंब न्यायालय ने प्रथमत: प्रत्यर्थी सं. 3 को बातचीत के लिए अपने सदन में और बाद में अपीलार्थी को और तत्पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 की नानी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 2 को और उसके पश्चात् श्री भालेन्द्र सिंह अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 के मामा को अपने कक्षसदन में बुलाया और अन्तत: पक्षकारों के काउंसेलों को सदन में

---

[1] 2017 (14) स्केल 121.

बुलाया गया था । उपर्युक्त प्रत्येक पक्षकार के संबंध में बातचीत को पृथक्-पृथक् अभिलिखित करके मुद्राबंद लिफाफे में रखा गया था । विद्वान् कुटुंब न्यायालय न्यायाधीश ने पक्षकारों के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् पुनः प्रत्यर्थी सं. 3 को अपने कक्षसदन में बुलाया और उससे पुनः पूछताछ की । कुटुंब न्यायालय के न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी सं. 3 के कहने पर उसके मामा श्री भालेन्द्र सिंह को पुनः बुलाकर बच्ची से बातचीत की और इस बातचीत को पृथक्तः अभिलिखित करके एक सीलबंद लिफाफे में रखा ।

31. जब तारीख 29 अप्रैल, 2017 को एक सप्ताह के पश्चात् आक्षेपित आदेश घोषित किया गया था तो विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अपने स्मरण के लिए उपर्युक्त मुद्राबंद लिफाफे खोले गए थे । हम विशेषतया यह उल्लेख कर सकते हैं कि उक्त बातचीत के संबंध में की गई सुसंगत मताभिव्यक्तियां, जिनका आक्षेपित निर्णय में विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है, इस प्रकार हैं :-

> "15. उक्त मुद्राबंद लिफाफा न्यायालय द्वारा अपनी याददाश्त के लिए खोला गया । तारीख 22 अप्रैल, 2017 को जब न्यायालय द्वारा बच्चे, पक्षकारों और उनके काउंसेलों के साथ जो बातचीत अभिलिखित की गई थी, उसमें न्यायालय द्वारा इस प्रकार संप्रेक्षण किया गया है -
>
> > बच्ची हस्ताक्षरकर्ता के कक्षसदन में प्रसन्नचित्त मुद्रा में मुस्कुराते हुए उपस्थित हुई । उसके नाम और विद्यालय के संबंध में प्रारंभिक पूछताछ की गई जिसके बारे में उसने उचित रूप से जवाब दिया । बच्ची बोलचाल में तेज है और वह स्वयं भी बोलती है और उसने अपने हाल ही के जन्मदिन के बारे में और तोहफे मिलने के बारे में न्यायालय को बताया जो उसे दिए गए थे और जो उसके मामा द्वारा उसे नहीं दिए गए थे जिसे वह प्यार से भालू मामा बुलाती है । उसने न्यायालय को विद्यालय में अपने मित्रों के बारे में बताया और यह भी बताया कि इस बार उसकी परीक्षाओं के कारण उसका जन्मदिन उसके मोहल्ले के मित्रों ने घर पर मनाया

था । न्यायालय द्वारा पूछने पर बच्ची ने यह बताया कि वह किसी बात से भयभीत नहीं है और इस संसार में 'भूत' नाम की कोई चीज नहीं है और उसकी नानी ने उसे यह बताया है कि भूत का अर्थ गुजरा हुआ समय है ।

बच्ची अत्यधिक प्रसन्न मुद्रा में प्रतीत होती है और उसने खुशी से अपना अभिसाक्ष्य दिया है । तथापि, जब बच्ची से इस बारे में पूछा गया कि वह कब से अपने पिता से नहीं मिली है तो उसने कांपना आरंभ कर दिया और असहजता महसूस की और उसके चेहरे पर नाखुशी के आसार उत्पन्न हुए । उसने यह बताया कि वह उसे मारते-पीटते थे । इसके पश्चात् उसने यह कहा कि वह अपने पिता से नहीं मिलना चाहती और न ही वह उनके साथ रहना चाहती है और न ही उनका चेहरा देखना चाहती है । उससे यह कहा गया था कि उसे किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है तथापि, वह लगातार रोती रही । जब न्यायालय द्वारा उसको सांत्वना दी गई और यह बताया गया कि उसकी नानी और उसके पिता को वकील अंकलों के साथ अंदर बुलाया जा रहा है तो उसने इस बात पर जोर दिया कि उसके भालू मामा को भी बुलाया जाए ।

बच्ची को उसके पिता से अधिक दूरी पर नहीं बिठाया गया अपितु अधोहस्ताक्षरकर्ता के बराबर की कुर्सी पर बिठाया गया तो उसने इस बात पर जोर दिया कि उसके भालू मामा को उसके बराबर बिठाया जाए क्योंकि वह उनके साथ सुरक्षित महसूस करेगी । न्यायालय के बार-बार कहने पर बच्ची ने अपने पिता से कोई बातचीत नहीं की और उसे नमस्ते नहीं किया और वह केवल रोती रही और उसके साथ उसका शरीर कांप रहा था और उसके हाथ कंपकपा रहे थे । चूंकि अपने पिता को देखने पर उसके आंसू नहीं रुक रहे थे इसलिए नायब कोर्ट ने बच्चे से कुछ समय के लिए अपने मामा के साथ जिसके साथ वह ठीक महसूस कर रही थी, दूसरे कक्ष में चलने के लिए कहा ।

न्यायालय-कर्मचारी द्वारा बच्चे को खाने-पीने की वस्तुं दी गईं जिन्हें उसने खुशी से स्वीकार कर लिया जैसाकि बच्ची ने स्वयं बताया ।

बच्ची के बाहर जाने के पश्चात् आवेदक और प्रत्यर्थियों ने एक दूसरे के विरुद्ध आरोप लगाने आरंभ कर दिए और दोनों पक्षकारों के काउंसेलों द्वारा अपने-अपने मुवक्किलों को रोकने के पश्चात् काउंसेलों ने आवेदन पर दलीलें देते हुए कतिपय निर्णयों को उद्धृत किया जिनको आवेदन पर आदेश पारित करते समय निर्दिष्ट किया जाएगा ।

जब उनके काउंसेलों ने अपनी-अपनी दलीलें समाप्त कीं और जब वे सदन से चले गए तो बच्ची को पुन: सदन में बुलाया गया । बच्ची अधोहस्ताक्षरकर्ता के सदन में प्रसन्नतापूर्वक आई और उसने न्यायालय-कर्मचारी द्वारा उसको दिए गए चिप्स और चाकलेटों के लिए न्यायालय का धन्यवाद किया । वह पुन: न्यायालय में ठीक महसूस करने लगी और उससे यह कहा गया कि उसे किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है ।

आवेदक द्वारा दी गई दलीलों के दौरान आवेदक ने यह उल्लेख किया था कि बच्ची की नानी और मामा श्री भालेन्द्र सिंह बच्ची को धमकियां देते थे और बच्ची को इंजेक्शन लगाने जिनसे वह डरती थी, की बात करते थे । बच्ची से सामान्य बातचीत करने पर उसने बताया कि वह किसी से नहीं डरती है और वह अपनी नानी और भालू मामा को बहुत चाहती है जो पहले यू. एस. में रहते थे । उसने यह मजाक भी किया कि वह बहुत खाते थे और भालू की तरह दिखते थे । उससे यह पूछे जाने पर कि वह उस समय जब वह पढ़ती थी, किसी से भयभीत रहती थी या डरती थी तो उसने खुशी से यह जवाब दिया कि उसे किसी ने नहीं मारा किंतु कभी-कभी उसके भालू मामा ने उसे थप्पड़ मारा था । उसने भोलेपन से अपनी मामियों सुश्री सविता और सुश्री साक्षी और

अपने दूसरे मामा (कोका मामा) के बारे में बताया । उसने यह भी बताया कि वह जी. डी. गोयनका विद्यालय, गुड़गांव जाती है और विद्यालय जाने के लिए उसकी नानी उसे तैयार करती है । उसके मामा उसे उपहार देते हैं ।

जब उससे यह पूछा गया कि क्या वह अपने पिता को नमस्ते करना और हैलो कहना पंसद करेगी तो वह पुन: यह कहते हुए रोने और कांपने लगी कि वह उनसे बात नहीं करना चाहती । उसे सांत्वना देने के पश्चात् आवेदक और उसके मामा को पुन: बुलाया गया तो उसने अधोहस्ताक्षरकर्ता और अपने मामा के हाथ पकड़ लिए और उसने कंपकपाते हुए बहुत धीमी आवाज में आवेदक को गुड आफटरनून कहा । आवेदक ने उसे जवाब दिया किंतु उसके पश्चात् बच्ची से कोई प्रश्न नहीं पूछा तथापि, मात्र यह कहा कि 'टीपू दीदी' और अन्य नातेदार उससे बाहर मिलने आए हैं और उसे अपने मामाओं से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं हैं और उसके पापा यहां मौजूद हैं ।

आवेदक को बच्ची से बातचीत करने और उसके विद्यालय और मित्रों आदि के संबंध में कतिपय प्रश्न करने को कहा गया था जिससे कि बच्ची उसके साथ ठीक महसूस करे तथापि, आवेदक द्वारा कोई प्रश्न नहीं पूछे गए । इसके प्रतिकूल बच्ची अपने मामा के पास गई और सख्ती से उसकी कोलिया भर ली और उससे बार-बार पिता से बातचीत करने के लिए पूछ जाने पर उसने बातचीत करने से इनकार कर दिया । न्यायालय द्वारा पूछे जाने पर बच्ची ने यह बताया कि 'स्तुति' उसकी अच्छी मित्र है ।

यह पूर्णतया स्पष्ट है कि बच्ची अपने पिता के साथ रहने पर ठीक महसूस नहीं करती है और उसको देखने पर स्तब्ध हो जाती है । सभी से कक्ष से जाने के लिए कहा गया था और बच्ची इतनी भयभीत थी कि उसने जाते समय

आवेदक को देखा भी नहीं । तथापि, बच्ची ने न्यायालय से जाते समय मुड़कर देखा और बॉय कहा ।"

32. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में यह ठीक ही मत व्यक्त किया है कि जब अंतरिम अभिरक्षा के विवाद्यक पर विचार किया जाए तो न्यायालय से यह पूर्णतया अपेक्षित है कि वह इस बारे में निर्धारण करे कि क्या बालक का कल्याण प्राथमिक महत्व का विषय है और क्या पिता एक नैसर्गिक अभिरक्षक के रूप में अथवा प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् नाना-नानी जिनके पास पहले से ही बच्ची की अभिरक्षा है, बेहतर तौर पर देखभाल करेंगे अथवा क्या प्रत्यर्थी सं. 3 की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थिति यह अपेक्षा करती है कि उसकी अंतरिम अभिरक्षा अपीलार्थी/पिता को दे दी जाए । विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 22 अप्रैल, 2017 को प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ विस्तार से बातचीत करने के पश्चात् यह राय व्यक्त की कि बच्ची को अपीलार्थी/पिता के सुपुर्द करने में बच्ची का कल्याण नहीं है क्योंकि बच्ची के नाना-नानी द्वारा और उसके मामा द्वारा बच्ची की ठीक प्रकार से देखभाल की जा रही है । बातचीत के दौरान अपीलार्थी की उपस्थिति के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 की प्रतिक्रिया को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए । कुटुंब न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 अपीलार्थी की उपस्थिति में स्पष्ट रूप से घबराती, कांपती और असहज हो जाती है और वह लगातार रोती रहती है और उसे सांत्वना देना और संभालना कठिन हो जाता है ।

33. संबद्ध तथ्यों और परिस्थितियों और संपूर्ण प्रास्थिति को दृष्टिगत करते हुए संतुलन प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के हक में जाता है और इसलिए कुटुंब न्यायालय ने यह निश्चित मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी/पिता को प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा मंजूर करने से बच्ची के खुशगवार जीवन और अच्छे वातावरण के जीवन से विचलित (महरूम) करना होगा और इससे उसकी बढ़ोतरी और विकास पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । परिणामतः अप्राप्तवय बालक की अस्थायी अभिरक्षा के लिए अनुरोध नामंजूर कर दिया गया था । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 3 के लिए यह आवश्यक नहीं था कि दोनों के बीच स्वस्थ और सकारात्मक नातेदारी स्थापित करने के लिए उन दोनों

को अंतरिम उपाय के रूप में मिलाया जाए और इसके लिए अपीलार्थी को एक मास में दो बार अर्थात् मास के प्रथम और तीसरे शनिवार को अप्राप्तवय बालक से मिलने के लिए मुलाकात के अधिकार मंजूर किए गए । यह निदेश दिया गया है कि प्रत्येक मास के प्रथम शनिवार को भेंट करने का स्थान कुटुंब न्यायालय से सहबद्ध बालक कक्ष में रखा जाएगा और दूसरी भेंट के बारे में यह निदेश दिया गया कि यह मुलाकात गुड़गांव में होगी जहां अप्राप्तवय/प्रत्यर्थी सं. 3, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के साथ रहती है और यह स्थान पक्षकारों के लिए उपयुक्त स्थान है ।

34. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर उद्धृत विनिश्चयों पर विचार करते हुए हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि मात्र इस कारण कि अपीलार्थी अप्राप्तवय बालिका अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 का पिता और नैसर्गिक संरक्षक है अथवा वह वित्तीय रूप से समृद्ध है, बच्ची की अंतरिम अभिरक्षा मंजूर करने के लिए एक सही व्यक्ति नहीं है । जहां अधिनियम, 1890 की धारा 12 या धारा 25 में से किसी के अधीन किसी आवेदन का विनिश्चय किया जाए वहां प्राथमिक विचारणा अप्राप्तवय की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थिति होगी, इसके सिवाय कुछ और नहीं ।

35. वित्तीय मानदंड के संबंध में मात्र इस कारण कि अपीलार्थी वित्तीय रूप से समृद्ध है, न्यायालय को अप्राप्तवय अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा अपीलार्थी को सुपुर्द करने के लिए मार्गदर्शक कारक नहीं हो सकता । किसी भी दशा में प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अपीलार्थी के मुकाबले बेहतर स्थिति में हैं, जहां वित्तीय समृद्धि की बात आती है । यदि स्थिति भिन्न भी होती तो भी इससे अधिक अंतर नहीं पड़ता । अत: केवल उक्त मानदंड न्यायालय को अप्राप्तवय-प्रत्यर्थी सं. 3 की अभिरक्षा के मामले में विनिश्चय करने के लिए महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता । इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 के बीच गंभीर रूप से विवाद है और उन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध दांडिक मामले फाइल किए हैं, इस न्यायालय के लिए सुसंगत नहीं होगा क्योंकि ये बाह्य कारक हैं जहां न्यायालय बालक के सर्वोपरि हित और कल्याण का निर्धारण कर रहा हो ।

36. वर्तमान मामले में न्यायालय के लिए मुख्य विचारणा प्रत्यर्थी सं. 3 का एकमात्र "कल्याण" देखना है और इस पद को विस्तृत रूप से समझा जाना चाहिए । न्यायालय को इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्यर्थी सं. 3 को जहां तक संभव हो, अच्छे और शांतिपूर्ण वातावरण में अर्थात् उसकी बढ़ोतरी और विकास के लिए बेहतर वातावरण में रखा जाना चाहिए । कुटुंब न्यायालय द्वारा बच्ची से बातचीत किए जाने से संबंधित कथन का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उसका प्रत्यर्थी सं. 2/नानी और मामा श्री भालेन्द्र सिंह और अन्य मामाओं तथा उनकी पत्नियों तथा उनके बच्चों से अत्यधिक लगाव है । इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने नाना-नानी और उनके कुटुंब के सदस्यों की उपस्थिति में अधिक सुरक्षित महसूस करती है और उन सभी ने उसे शांत रखने और सांत्वना देने में भूमिका निभाई है जो कि एक माता रहित बच्ची है और इस छोटी आयु में उसे देखभाल की आवश्यकता है । हमारे मतानुसार धन संबंधी स्थिति के ऊपर बच्ची की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्थिति अधिक महत्व रखती है जहां अप्राप्तवय बालिका के हित के संतुलन पर विचार किया जाए । इस आयु के किसी बालक की सुरक्षा, देखभाल और घर पर शांतिमय वातावरण और उसके संतुलित विकास के लिए कुटुंब का प्रेम और देखभाल होना बच्ची के लिए सर्वोपरि विचारणा है जिसके बारे में हमें यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 उसे ऐसा वातावरण बेहतर तौर पर दे सकते हैं ।

37. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय के पास इस बात के लिए कोई कारण नहीं है कि न्यायालय उस आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करे जिसके अधीन अपीलार्थी/पिता द्वारा अप्राप्तवय अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 के संबंध में अंतरिम अभिरक्षा के लिए किए गए अनुरोध को नामंजूर किया गया है । हम विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त इस मत से सहमत हैं कि जब तक प्रत्यर्थी सं. 3 अपने पिता अर्थात् अपीलार्थी के साथ सुपरिचित (सहज) न हो जाए, प्रत्यर्थी सं. 3 के नाना-नानी उसकी बेहतरी स्थापित करेंगे और अपने साथ लंबी अवधि तक रखकर उसके विश्वास का स्तर पर्याप्त और

बेहतर तौर पर निर्मित करेंगे यदि उसे प्रत्यर्थी सं. 1 और 2/नाना-नानी की अभिरक्षा से न हटाया जाए ।

38. हम यहां यह उल्लेख कर सकते हैं कि अपीलार्थी/पिता की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री नरूला ने दलीलों के दौरान मिलने के अधिकारों के बारे में जो आक्षेपित आदेश के अधीन मंजूर किए गए हैं, यह कहा है कि अपीलार्थी को कुटुंब न्यायालय से सहबद्ध बालक कक्ष में प्रत्यर्थी सं. 3 के साथ कभी-भी अकेला नहीं छोड़ा गया जिससे कि बच्ची अपने पिता के साथ सुपरिचित (सहज) होने में समर्थ होती और प्रत्यर्थी सं. 3 के मामा सदैव ही उनके आस-पास बने रहे जिससे कि पिता पुत्री के मिलने में बाधा उत्पन्न हुई । विद्वान् काउंसेल ने यह भी कहा है कि अपीलार्थी को बच्ची से गुड़गांव में मिलने के बारे में पूर्ण आशंका है क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 का उस क्षेत्र में पूर्ण नियंत्रण और प्रभाव है ।

39. उपर्युक्त आशंका के निवारण के लिए हमने यह सुझाव दिया था कि अपीलार्थी के लिए आक्षेपित आदेश के अधीन एक मास में दो बार प्रत्यर्थी सं. 3 से मिलने के अधिकारों के बारे में आरंभत: संबंधित कुटुंब न्यायालय से सहबद्ध बालक कक्ष में इंतजाम किया जाए । इसके अतिरिक्त अभिव्यक्त की गई इस शिकायत को दृष्टिगत करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 3 के मामा लगातार मिलने के अधिकारों के दौरान हस्तक्षेप कर रहे थे, हमने यह सुझाव दिया था कि कुटुंब न्यायालय किसी सलाहकार के बारे में निदेश दे सकता है और इस दौरान में बालक कक्ष में मौजूद रहने का निदेश कर सकता है ।

40. आक्षेपित आदेश की जिसके द्वारा अपीलार्थी को प्रत्यर्थी सं. 3 की अंतरिम अभिरक्षा देने से इनकार किया गया है, पुष्टि की जाती है । हमारा यह मत है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 के बीच घनिष्ठता बनाने में प्रगति लाने के लिए पिता और पुत्री को मिलने की अवधि के दौरान अकेले छोड़ा जाना चाहिए । इस आशय और प्रयोजन के साथ हम तारीख 29 अप्रैल, 2017 के आक्षेपित आदेश को इस परिसीमा तक उपांतरित करते हैं मुख्य आवेदन के लंबन के दौरान प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 संबंधित कुटुंब न्यायालय से सहबद्ध बालक कक्ष में प्रत्येक मास के

प्रथम और तीसरे शनिवार को अप्राप्तवय-प्रत्यर्थी सं. 3 को लाएंगे और उक्त न्यायालय से संबद्ध परामर्शी अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3 के बीच भेंट के दौरान मौजूद रहेंगे । आक्षेपित आदेश में यथा निहित मुलाकात के घंटे की अवधि डेढ़ घंटा अर्थात् 11.30 बजे पूर्वाह्न से 1.00 बजे अपराह्न है । यदि परामर्शी कुटुंब न्यायालय को यह बताता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 अपीलार्थी के साथ सहज है तब प्रत्येक मास के एक शनिवार को मिलने के घंटे विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा दो घंटे तक अर्थात् 11.00 बजे पूर्वाह्न से 1.00 बजे अपराह्न तक विस्तारित किए जा सकते हैं ।

41. यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर पारित किया गया आदेश पूर्ण रूप से अंतरिम प्रकृति का है और परिस्थितियों में किसी परिवर्तन की दशा में कोई भी पक्षकार इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह मिलने के अधिकारों के संबंध में उपांतरण/परिवर्तन करने के लिए पर्याप्त सामग्री के साथ समावेदन कर सकता है ।

42. उपर्युक्त अभिव्यक्त मत केवल कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश में उल्लिखित तथ्यात्मक स्थिति के संदर्भ में व्यक्त किया गया है और इसलिए उक्त मत उक्त न्यायालय को अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए मुख्य आवेदन का अंतिम रूप से विनिश्चय करते समय प्रभावित नहीं करेगा ।

43. वर्तमान अपील उपर्युक्त निबंधनों में निपटाई जाती है । पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

अपील में तदनुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

---

(2019) 1 सि. नि. प. 376 पटना

## शिवजी राय और अन्य

बनाम

## संयुक्त निदेशक चकबंदी, मुजफ्फरपुर और अन्य

तारीख 15 फरवरी, 2018

**न्यायमूर्ति प्रभात कुमार झा**

**संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 122 [सपठित उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1954 की धारा 40] – कृषि भूमि – दान-विलेख – चकबंदी अधिकारी द्वारा दान-विलेख की विधिमान्यता के बारे में निष्कर्ष – चकबंदी अधिकारी की शक्तियां और अधिकारिता – चकबंदी अधिकारी अथवा चकबंदी प्राधिकारियों को किसी विलेख को शून्य घोषित करने की अधिकारिता नहीं है – ऐसी अधिकारिता केवल अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय को प्राप्त है ।**

इस रिट याचिका को फाइल करने से संबंधित संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि यह कहा गया है कि दरोगा राय नामक व्यक्ति ने तारीख 7 मई, 1975 को याचियों के पिता अनूप लाल राय के हक में एक दान-विलेख निष्पादित किया था । अनूप लाल राय ने उपर्युक्त दान-विलेख के आधार पर चकबंदी कार्यवाहियों के दौरान अधिकार संबंधी अभिलेख में अपने नाम की प्रविष्टि कराने के लिए चकबंदी अधिकारी, फतेहपुर के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था तथापि, चकबंदी अधिकारी ने अनूप लाल राय का और उसके विधिक वारिसों का यह अभिनिर्धारित करते हुए आवेदन खारिज कर दिया कि दान-विलेख शून्य है । इसके पश्चात् याचियों द्वारा फाइल की गई अपील और पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया था । इस रिट याचिका में के याचियों ने 1987 के चकबंदी पुनरीक्षण मामला सं. 1052 में तारीख 23 अगस्त, 1994 को पारित आदेश (उपाबंध-5) और 1986-87 की चकबंदी अपील सं. 274 में तारीख 30 मार्च, 1987 को पारित आदेश (उपाबंध-4) तथा 1986 के चकबंदी

मामला सं. 162 में तारीख 24 सितंबर, 1986 को पारित आदेश (उपाबंध-3) को अभिखंडित करने का अनुरोध किया है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – न्यायालय को अभिलेख का परिशीलन करने और दोनों पक्षों की दलीलों पर विचार करने तथा दोनों पक्षों के अभिवचनों का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि दरोगा राय ने 1974 के मामला सं. 480 में चकबंदी अधिकारी से अनुमति (परमीशन) प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 7 मई, 1975 को दान-विलेख निष्पादित किया था । चकबंदी प्राधिकारी ने तारीख 12 अप्रैल, 1975 को अनुमति प्रदान की थी । निस्संदेह दरोगा राय ने दान-विलेख को कपटपूर्ण, अवैध और अप्रवर्तनीय घोषित कराने के लिए 1977 का हक वाद सं. 22 भी फाइल किया था और चूंकि उसने उस पर अपने हस्ताक्षर किए थे तथापि, इसमें किए गए अभिकथनों से जिनके आधार पर वाद फाइल किया गया था, यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दान-विलेख के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त दस्तावेज शून्य है जब तक कि अधिकारिता रखने वाले सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा इसे शून्य घोषित न किया जाए । चकबंदी प्राधिकारी को किसी दान-विलेख को शून्य घोषित करने या उसकी उपेक्षा करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है । उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि प्रथमदृष्ट्या दान-विलेख एक शून्य दस्तावेज नहीं है तथापि, चकबंदी प्राधिकारी ने अवैध रूप से और अधिकारिता के बिना इसे शून्य घोषित किया है । तद्नुसार 1987 के चकबंदी पुनरीक्षण मामला सं. 1052 में तारीख 23 अगस्त, 1993 को पारित आदेश (उपाबंध-5), 1986-87 की चकबंदी अपील सं. 274 में तारीख 30 मार्च, 1987 को पारित आदेश (उपाबंध-4) और 1986 के चकबंदी मामला सं. 162 में तारीख 24 सितंबर, 1986 को पारित आदेश (उपाबंध-3) अपास्त किए जाते हैं । (पैरा 8, 9 और 10)

**अनुसरित निर्णय**

पैरा

[2008] 2008 (2) पी. एल. जे. आर. 722 :
**कैलाशी देवी** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ; 6

[1989] 1989 पी. एल. जे. आर. 1203 :
**कलिका कुवर** उर्फ **कलिका सिंह** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** । 6

**आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 1993 का सिविल रिट मामला सं. 11362.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद, 226 के अधीन रिट याचिका ।

**याचियों की ओर से** सर्वश्री नरेश चन्द्र वर्मा और नटराज वर्मा

**प्रत्यर्थियों की ओर से** श्री सुनील कुमार पांडे

**न्यायमूर्ति प्रभात कुमार झा** – दोनों पक्षों को सुना गया ।

2. इस रिट याचिका में के याचियों ने 1987 के चकबंदी पुनरीक्षण मामला सं. 1052 में तारीख 23 अगस्त, 1994 को पारित आदेश (उपाबंध-5) और 1986-87 की चकबंदी अपील सं. 274 में तारीख 30 मार्च, 1987 को पारित आदेश (उपाबंध-4) तथा 1986 के चकबंदी मामला सं. 162 में तारीख 24 सितंबर, 1986 को पारित आदेश (उपाबंध-3) को अभिखंडित करने का अनुरोध किया है ।

3. इस रिट याचिका को फाइल करने से संबंधित संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि यह कहा गया है कि दरोगा राय नामक व्यक्ति ने तारीख 7 मई, 1975 को याचियों के पिता अनूप लाल राय के हक में एक दान-विलेख निष्पादित किया था ।

4. अनूप लाल राय ने उपर्युक्त दान-विलेख के आधार पर चकबंदी कार्यवाहियों के दौरान अधिकार संबंधी अभिलेख में अपने नाम की प्रविष्टि कराने के लिए चकबंदी अधिकारी, फतेहपुर के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था तथापि, चकबंदी अधिकारी ने अनूप लाल राय का और उसके विधिक वारिसों का यह अभिनिर्धारित करते हुए आवेदन खारिज कर दिया कि दान-विलेख शून्य है । इसके पश्चात् याचियों द्वारा फाइल की गई अपील और पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया था ।

5. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दरोगा राय ने तारीख 7 मई, 1975 को याचियों के पिता अनूप लाल राय के हक में ग्राम रयपुरा, अंचल फतेहपुर जिला वैशाली में स्थित खाता सं. 22 क्षेत्रफल 3.41 एकड़ के विभिन्न भूखंडों के संबंध में दान-विलेख निष्पादित किया था । दरोगा राय ने दान-विलेख के निष्पादन के पूर्व 1974 के मामला सं. 480 द्वारा दान-विलेख के निष्पादन के लिए अनुमति लेने हेतु आवेदन फाइल किया था और चकबंदी अधिकारी ने तारीख 12 अप्रैल, 1975 के आदेश द्वारा अनुमति मंजूर की थी और इसके पश्चात् दरोगा राय ने दान-विलेख निष्पादित किया था । यह भी दलील दी गई है कि यदि दरोगा राय भी अनूप लाल राय के हक में निष्पादित दान-विलेख को अपास्त करने के लिए वाद फाइल करता तो भी उपर्युक्त दान-विलेख के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह आरंभतः शून्य हो जाता । दरोगा राय ने यह अभिकथित किया है कि दान-विलेख कपट करने के पश्चात् और उसका अंगुष्ठ चिह्न/हस्ताक्षर कूटरचित रूप से लगाने के पश्चात् अस्तित्व में आया था किन्तु जब तक कि कोई सक्षम सिविल न्यायालय विलेख को अवैध विलेख या अप्रवर्तनीय घोषित नहीं करता, चकबंदी प्राधिकारी को उस स्तर पर दान-विलेख को शून्य घोषित करने और उसकी उपेक्षा करने की अधिकारिता नहीं है जब चकबंदी अधिनियम की धारा 10 के अधीन अधिकार विलेख तैयार किए जा रहे हों ।

6. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित **कैलाशी देवी** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले के निर्णय का यह दलील देते हुए अवलंब लिया है कि इस न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश ने, इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा **कलिका कुवर** उर्फ **कलिका सिंह** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि

---

[1] 2008 (2) पी. एल. जे. आर. 722.

[2] 1989 पी. एल. जे. आर. 1203.

चकबंदी अधिकारी का यह कार्य नहीं है कि वह किसी अविधिमान्य दस्तावेज को शून्यकरणीय दस्तावेज घोषित करे । यह अधिकारिता केवल अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय में निहित है । यह भी दलील दी गई है कि कोई चकबंदी न्यायालय किसी शून्यकरणीय दस्तावेज की उपेक्षा नहीं कर सकता । शून्य दस्तावेज वह है जो किसी विधि के अतिक्रमण में निष्पादित किया गया हो । इस संपूर्ण मामले में यह कहीं भी नहीं आया है कि दरोगा राय द्वारा निष्पादित दान-विलेख विधि के किसी उपबंध को दृष्टिगत करते हुए आरंभत: शून्य है चाहे वह चकबंदी अधिनियम के उपबंध हों या किसी अन्य विधि यथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के ।

7. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चकबंदी अधिकारी तथा अपील न्यायालय और पुनरक्षणीय प्राधिकारी ने यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि दरोगा राय ने अपने पूर्वजों से विरासत में प्राप्त भूमियों के संबंध में दान-विलेख निष्पादित किया है । प्राधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि दरोगा राय ने अपनी स्वेच्छा के बिना दान-विलेख निष्पादित किया होता तो भी उसे 1977 के हक वाद सं. 22 में इसी दान-विलेख को आक्षेपित करने का कोई अवसर नहीं है क्योंकि इसका चकबंदी अधिनियम की धारा 4(ग) के अधीन उपशमन कर दिया गया है ।

8. मुझे अभिलेख का परिशीलन करने और दोनों पक्षों की दलीलों पर विचार करने तथा दोनों पक्षों के अभिवचनों का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि दरोगा राय ने 1974 के मामला सं. 480 में चकबंदी अधिकारी से अनुमति (परमीशन) प्राप्त करने के पश्चात् तारीख 7 मई, 1975 को दान-विलेख निष्पादित किया था । चकबंदी प्राधिकारी ने तारीख 12 अप्रैल, 1975 को अनुमति प्रदान की थी । निस्संदेह दरोगा राय ने दान-विलेख को कपटपूर्ण, अवैध और अप्रवर्तनीय घोषित कराने के लिए 1977 का हक वाद सं. 22 भी फाइल किया था और चूंकि उसने उस पर अपने हस्ताक्षर किए थे तथापि, इसमें किए गए

अभिकथनों से जिनके आधार पर वाद फाइल किया गया था, यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त दान-विलेख के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त दस्तावेज शून्य है जब तक कि अधिकारिता रखने वाले सक्षम सिविल न्यायालय द्वारा इसे शून्य घोषित न किया जाए । चकबंदी प्राधिकारी को किसी दान-विलेख को शून्य घोषित करने या उसकी उपेक्षा करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है ।

9. उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् मुझे यह प्रतीत होता है कि प्रथमदृष्ट्या दान-विलेख एक शून्य दस्तावेज नहीं है तथापि, चकबंदी प्राधिकारी ने अवैध रूप से और अधिकारिता के बिना इसे शून्य घोषित किया है ।

10. तद्नुसार 1987 के चकबंदी पुनरीक्षण मामला सं. 1052 में तारीख 23 अगस्त, 1993 को पारित आदेश (उपाबंध-5), 1986-87 की चकबंदी अपील सं. 274 में तारीख 30 मार्च, 1987 को पारित आदेश (उपाबंध-4) और 1986 के चकबंदी मामला सं. 162 में तारीख 24 सितंबर, 1986 को पारित आदेश (उपाबंध-3) अपास्त किए जाते हैं ।

11. वर्तमान रिट याचिका मंजूर की जाती है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

---

(2019) 1 सि. नि. प. 382 मध्य प्रदेश

## हेमन्त रावत

बनाम

## श्रीमती अनुभा रावत

तारीख 19 अप्रैल, 2018

**न्यायमूर्ति एस. के. गंगेल और न्यायमूर्ति (श्रीमती) अंजलि पालो**

**हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 9 और 13(1)(i-क) – पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी – पति द्वारा विरोध – पति द्वारा पत्नी और बच्चे के भरणपोषण से बचने के लिए बच्चे के पैतृत्व से इनकार – पति द्वारा पत्नी को मायके में छोड़ने के पश्चात् बच्चे के जन्म के खर्चे न उठाया जाना – पति के आचरण से यह साबित होना कि वह अपनी पत्नी और बच्चे को अपने साथ रखने का इच्छुक नहीं था – पत्नी के हक में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री ठीक ही मंजूर की गई है ।**

**हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 9 और 23 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ख] – पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी – पति द्वारा पत्नी से की गई बातचीत को रिकार्ड किया जाना – पति द्वारा उक्त बातचीत को अपनी प्रतिरक्षा स्वरूप पेश किया जाना – ऐसी बातचीत का अवलंब लेने के लिए अर्जीदार को यह साबित करना चाहिए कि वह वैवाहिक साहचर्य स्थापित करने के लिए और वैवाहिक अधिकारों तथा कर्तव्यों को पूरा करने के लिए सद्भाविक इच्छा रखता या रखती है ।**

**हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 9 और 13(1)(i-क) – दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्याथापन के लिए अर्जी – पति या पत्नी के साहचर्य से प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु – युक्तियुक्त प्रतिहेतु की अवधारणा – प्रत्येक मामला अपने-अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है इसलिए यह संभव नहीं है कि युक्तियुक्त प्रतिहेतु के लिए ऐसा कोई नि:शेष कथन किया जाए कि क्या बात 'युक्तियुक्त प्रतिहेतु' गठित करती है और क्या नहीं ।**

यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी आपस में पति और पत्नी हैं । उनका विवाह तारीख 14 अप्रैल, 2003 को रतलाम में हुआ था । वे लगभग साढ़े तीन मास तक साथ-साथ रहे । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के विरुद्ध इस आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी फाइल की थी कि उसके कुटुंब के सदस्यों ने उनके विवाह के समय नकद धनराशि और अन्य तोहफे दिए थे । विवाह के 4 दिन के पश्चात् वे शिमला गए थे और एक दूसरे के साथ रहे थे । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी भोपाल में अपने माता-पिता के मकान में चली गई । वह वहां तारीख 20 मई, 2003 तक रहती रही । उसके पश्चात् वह रतलाम वापस आई । इसके पश्चात् तारीख 12 जुलाई, 2003 को अपने माता-पिता के मकान पर पहला सावन मनाने के लिए भोपाल चली गई । इसके पश्चात् वह पुनः रतलाम वापस आई और गर्भवती हो गई । अपने बच्चे के जन्म के लिए वह तारीख 11 नवंबर, 2003 को भोपाल आई और उसने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को एक पुत्र को जन्म दिया । शल्य-क्रिया के चिकित्सीय खर्चे उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा उठाए गए थे । सूचना दिए जाने के पश्चात् भी अपीलार्थी भोपाल नहीं आया । पत्नी ने यह भी अभिकथित किया है कि अपीलार्थी दहेज से संतुष्ट नहीं था । वह दहेज के रूप में एक्टिवा स्कूटर और दो लाख रुपए की मांग कर रहा था और उसकी मांग पूरी न किए जाने के कारण वह प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों से नाराज हो गया । वह 2003 की गर्मियों में अंतिम बार भोपाल आया और इसके पश्चात् उसने अपनी पत्नी और पुत्र की पूर्ण रूप से उपेक्षा की । वे प्रत्यर्थी की विधवा माता के ऊपर निर्भर थे । प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ रहने के लिए तैयार थी । तथापि, अपीलार्थी उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए तैयार नहीं था । इसलिए प्रत्यर्थी-पत्नी ने पति के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी फाइल की । अपीलार्थी/पति ने कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन यह प्रथम अपील प्रथम अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, भोपाल द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन तारीख 10 सितंबर, 2015 को पारित उस निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर फाइल की है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी/पत्नी के हक में

दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री मंजूर की गई है । अपील खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी पति और पत्नी हैं । उनका विवाह तारीख 4 अप्रैल, 2003 को हुआ था । प्रत्यर्थी ने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को अपने माता-पिता के मकान पर अपने पुत्र को जन्म दिया था । प्रत्यर्थी का यह कथन कि बच्चे का जन्म शल्य क्रिया द्वारा हुआ था, उसकी प्रतिपरीक्षा में अनाक्षेपित रहा है । गर्भ धारण की अवधि स्वत: यह साबित करती है कि पत्नी ने विवाह के तुरन्त पश्चात् गर्भ धारण कर लिया था । न्यायालय के मतानुसार अपीलार्थी का यह अभिकथन कि प्रत्यर्थी ने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने से इनकार कर दिया था, अविश्वसनीय प्रतीत होता है । यह भी अविवादित है कि प्रत्यर्थी तारीख 12 जुलाई, 2003 को सावन पूजा करने के लिए अपने माता-पिता के मकान पर गई थी । अपीलार्थी ने इस बात को आक्षेपित नहीं किया है कि कुटुंब की परंपरा के अनुसार प्रथम बच्चे का जन्म प्रत्यर्थी के माता-पिता के मकान पर होना था । प्रत्यर्थी के अनुसार अपीलार्थी ने उसके उपचार के चिकित्सीय खर्चे नहीं उठाए थे । न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि इस संबंध में उसका साक्ष्य अखंडनीय रहा है । अपीलार्थी ने यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज या कोई बिल फाइल नहीं किया है कि सभी खर्चे उसके द्वारा संदत्त किए गए थे । अपीलार्थी का इस प्रकार का आचरण अपीलार्थी के स्वभाव को उपदर्शित करता है । वह धन बचाना चाहता था और उसने अपना भार अपनी ससुराल वालों पर डाल दिया था । प्रत्यर्थी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को बच्चे के जन्म के बारे में अपीलार्थी और उसकी बहन को रात्रि में टेलीफोन द्वारा सूचना दी थी । अपीलार्थी अगले दिन भोपाल आया था तथापि, वह अपने साले (ब्रदर-इन-ला) से नाराज था कि उन्होंने बच्चे के जन्म के बारे में उसे समुचित रूप से सूचित नहीं किया था । इसके पश्चात् अपीलार्थी रतलाम वापस चला गया था और उसके पश्चात् वह कभी भी अपनी पत्नी और बच्चे को रतलाम ले जाने के लिए भोपाल नहीं आया । तारीख 10 जुलाई, 2005 को प्रत्यर्थी अपनी बड़ी बहन, अपने बड़े बहनोई, छोटी बहन और छोटे बहनोई के साथ अपनी ससुराल गई थी

तथापि, अपीलार्थी के माता-पिता ने उन्हें घर में घुसने से रोक दिया । प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथन किया है कि उसने अपीलार्थी से सम्पर्क करने का प्रयास किया था, किन्तु अपीलार्थी ने उसकी उपेक्षा करने का प्रयत्न किया । प्रत्यर्थी के नातेदार कई बार अपीलार्थी से मिलने रतलाम गए किन्तु उसने यह कहा कि वह प्रत्यर्थी को अपने साथ नहीं रखना चाहता है । अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी द्वारा अपने और प्रत्यर्थी के बीच मामले में सुलह कराने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए । अपीलार्थी द्वारा न्यायालय के समक्ष दी गई दलील से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि वह अपनी पत्नी को किसी भी प्रकार से अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं है । उसने बल देकर यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्य सही नहीं हैं । इससे यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी केवल अपने अहम के कारण अपनी पत्नी को छोड़ने पर अमादा है । प्रत्यर्थी ने स्वयं और अपने माता-पिता द्वारा साथ रहने के लिए अनेकों बार अपीलार्थी से सम्पर्क करने का प्रयास किया था । अपीलार्थी ने दलीलों के दौरान इस बात से इनकार किया है कि उसके पुत्र का जन्म उनके विवाह-बंधन से हुआ था । उसके द्वारा किया गया ऐसा इनकार उसके न्यायालय में किए गए कथन के प्रतिकूल है । न्यायालय के मतानुसार इस प्रकार के आचरण से भी विवक्षित रूप से यह उपदर्शित होता है कि उसने अपने स्वयं के बच्चे के भरणपोषण के लिए स्वयं को उस दायित्व से बचाने के लिए स्वयं अपने पुत्र के पैतृत्व के संबंध में आधारहीन प्रश्न उठाए हैं । अपीलार्थी के इस आचरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती जिससे स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि वह अपनी पत्नी और अपने पुत्र के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए दिलचस्पी नहीं रखता है । इस संबंध में दोनों पक्षकारों के परिसाक्ष्य के आधार पर न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने कभी भी अपनी पत्नी और पुत्र के लिए कोई सहारा, भरणपोषण प्रभार और चिकित्सीय खर्चे उठाने का प्रयास नहीं किया । अपीलार्थी ने खुले न्यायालय में यह साबित करने का प्रयत्न किया है कि उसकी पत्नी अपनी इच्छा के अनुसार उसके साथ जाने के लिए तैयार नहीं थी । अपीलार्थी द्वारा अपनी पत्नी और पुत्र को छोड़ने के लिए यह एक पर्याप्त आधार नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति में कुछ

अच्छी और कुछ बुरी बातें होती हैं । विवाह के पश्चात् यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन साथी की अच्छी और बुरी आदतों दोनों को ही स्वीकार करना चाहिए । यदि उनमें से कोई एक दूसरे को मजबूर करता है तो पति और पत्नी के बीच इस प्रकार के विवाद उठना स्वाभाविक है । (पैरा 11, 12, 13, 15 और 17)

अपीलार्थी ने अपने और प्रत्यर्थी के बीच बातचीत को साबित करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(ख) के अधीन अपने आवेदन को स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि आक्षेपित निर्णय तारीख 10 सितंबर, 2015 को पारित किया गया है । उपर्युक्त बातचीत तारीख 18 जनवरी, 2004 और तारीख 3 नवंबर, 2011 को अभिलिखित (रिकार्ड) की गई थी । अपीलार्थी ने बातचीत की लिखित प्रतिलिपि अपने आवेदन के साथ फाइल की है । उपर्युक्त प्रति के परिशीलन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी युक्तिपूर्वक अपनी पत्नी के दोषों के लिए और दूसरी ओर स्वयं को बचाने के प्रयास के लिए अपनी पत्नी को फंसाना चाहता था । बातचीत से यह भी उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपनी पिछली गलतियों को भूलकर अपीलार्थी-पति के साथ शांतिपूर्वक रहना चाहती थी । तथापि, अपीलार्थी सतत् रूप से प्रत्यर्थी की पूर्वतर गलतियों और पूर्व में की गई कमियों को प्रदर्शित करने का प्रयास कर रहा है । अपीलार्थी के इस प्रकार के आचरण से यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी ने कभी भी अपनी पत्नी को समझने और आपस में अपने विवादों को सुलझाने के लिए अपनी ओर से प्रयास नहीं किए । दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि वह अपने पुत्र की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता था और वह स्वयं ही उनसे पृथक् रहना चाहता था । हिन्दू विवाह अधिनियम का स्पष्टीकरण यह विहित करता है कि – जहां यह प्रश्न उठता है कि साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 को अधिनियम की धारा 23 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जो न्यायालय को कतिपय मामलों के बारे में अपना समाधान करने के पश्चात् दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के बारे में जांच करने और अन्य बातों के

साथ-साथ कोई डिक्री पारित करने के लिए कर्तव्याबद्ध करती है, अत: अर्जीदार को यह उपदर्शित करना चाहिए कि वह वैवाहिक साहचर्य को स्थापित करने के लिए और वैवाहिक अधिकारों और कर्तव्यों को पूरा करने के लिए सद्भाविक इच्छा रखता या रखती है । पति पत्नी के बीच पत्र-व्यवहार का या बातचीत का प्राय: दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के अभिवाक् के समर्थन में या विरोध में अवलंब लिया जाता है । इन तथ्यों का परिशीलन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, चिंता और तत्समय पर पति या पत्नी की मानसिक अवस्था और पक्षकारों के बीच आरंभ से ही उस स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए जो उनके कथनों में, शिकायतों में और उस समय पर जब आरोप लगाए गए हैं, अवस्थित हैं । पति और पत्नी के बीच ऐसी बातचीत का उन प्रकथनों को दृष्टिगत करते हुए महत्व हो सकता है जब वे किए गए हैं और न्यायालय यह आदेश कर सकता है कि ऐसी बातचीत, ऐसी बातचीत में किए गए अभिकथनों की सत्यता की परीक्षा करने के लिए न्यायालय के समक्ष रखी जानी चाहिए । (पैरा 18 और 21)

यह प्रतीत होता है कि पति या पत्नी का आचरण जो किसी एक या अन्य कारण से क्रूरता के अन्तर्गत या किसी अन्य वैवाहिक अपराध के अन्तर्गत आता है, पति या पत्नी को छोड़ने के लिए या साथ न रहने के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु प्रदत्त करता है और यह वर्तमान धारा के अधीन प्रत्यास्थापन के लिए वाद में प्रतिरक्षा प्रदत्त करता है । यह बात कि क्या किसी भी पक्षकार के पास दूसरे को छोड़ने के लिए या पृथक् रहने के लिए कोई युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, इस बात पर निर्भर करती है कि शिकायत किया गया आचरण गंभीर है या गंभीर प्रकृति का है । यह अभिवचन कि प्रत्यर्थी के पास आवेदक के साथ न रहने के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु था, अन्तर्वलित तथ्यों के जांच का विषय होना चाहिए । प्रत्येक मामला अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और इसलिए यह संभव नहीं है कि इस बारे में नि:शेष कथन किया जाए कि क्या बात 'युक्तियुक्त प्रतिहेतु', गठित कर सकती है और क्या नहीं । उपर्युक्त सिद्धांतों को स्वीकार किया गया है और वर्तमान धारा के अधीन आवेदक को अनुतोष इस आधार पर मंजूर नहीं किया गया था कि दूसरे पक्षकार ने युक्तियुक्त प्रतिहेतु के आधार पर आवेदक के साहचर्य से

प्रत्याहरण कर लिया है । वर्तमान मामले में न्यायालय को यह प्रतीत नहीं होता कि अपीलार्थी के पास प्रत्यर्थी के साथ न रहने के लिए कोई युक्तियुक्त प्रतिहेतु है । अपीलार्थी-पति द्वारा किए गए सभी अभिकथनों और प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा किए गए इनकार, इसी प्रकार प्रत्यर्थी-पत्नी के आरोप और अपीलार्थी-पति द्वारा किए गए इनकार से यह उपदर्शित होता है कि सार्थक प्रयासों द्वारा उनके विवाद को सुलझाया जा सकता है । उनके विवाह के पश्चात् उनके बीच मामूली और छोटे-मौटे विवाद हुए हैं जिन्हें आपसी समझबूझ द्वारा सुलझाए जाने की आवश्यकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी की मुख्य शिकायत यह है कि वह अपने ससुराल वालों के व्यवहार से आहत हुआ था । तथापि, न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि ऐसी कोई घटना नहीं हुई जहां प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार किया हो या अपीलार्थी के प्रति उसका व्यवहार क्रूरतापूर्ण रहा हो । दहेज की मांग के अभिकथन के संबंध में प्रायः यह देखा जाता है कि वैवाहिक विवादों के मामले में जहां पक्षकार लंबी अवधि से पृथक्-पृथक् रह रहे हों, वे अपने पति या पत्नी को मिथ्या आधारों पर आरोपित करते हैं । (पैरा 20, 23 और 24)

**निर्दिष्ट निर्णय**

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2017] | ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1316 = (2017) 4 एस. सी. सी. 85 : **सुमन सिंह** बनाम **संजय सिंह** ; | 22, 25 |
| [1994] | 1994 की प्रथम अपील सं. 155 : **गीताबाई (श्रीमती)** बनाम **राजा राम लोधी** । | 16 |

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की प्रथम अपील सं. 947.**

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** स्वयं अपीलार्थी

**प्रत्यर्थी की ओर से** श्री तबरेज़ शेख

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) अंजलि पालो ने दिया ।

**न्या. (श्रीमती) पालो** – अपीलार्थी/पति ने कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19 के अधीन यह प्रथम अपील प्रथम अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, भोपाल द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन तारीख 10 सितंबर, 2015 को पारित उस निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर फाइल की है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी/पत्नी के हक में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री मंजूर की गई है ।

2. यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी आपस में पति और पत्नी हैं । उनका विवाह तारीख 14 अप्रैल, 2003 को रतलाम में हुआ था । वे लगभग साढ़े तीन मास तक साथ-साथ रहे ।

3. प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के विरुद्ध इस आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी फाइल की थी कि उसके कुटुंब के सदस्यों ने उनके विवाह के समय नकद धनराशि और अन्य तोहफे दिए थे । विवाह के 4 दिन के पश्चात् वे शिमला गए थे और एक दूसरे के साथ रहे थे । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी भोपाल में अपने माता-पिता के मकान में चली गई । वह वहां तारीख 20 मई, 2003 तक रहती रही । उसके पश्चात् वह रतलाम वापस आई । इसके पश्चात् तारीख 12 जुलाई, 2003 को अपने माता-पिता के मकान पर पहला सावन मनाने के लिए भोपाल चली गई । इसके पश्चात् वह पुनः रतलाम वापस आई और गर्भवती हो गई । अपने बच्चे के जन्म के लिए वह तारीख 11 नवंबर, 2003 को भोपाल आई और उसने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को एक पुत्र को जन्म दिया । शल्य-क्रिया के चिकित्सीय खर्चे उसके कुटुंब के सदस्यों द्वारा उठाए गए थे । सूचना दिए जाने के पश्चात् भी अपीलार्थी भोपाल नहीं आया ।

4. पत्नी ने यह भी अभिकथित किया है कि अपीलार्थी दहेज से संतुष्ट नहीं था । वह दहेज के रूप में एक्टिवा स्कूटर और दो लाख रुपए की मांग कर रहा था और उसकी मांग पूरी न किए जाने के कारण वह प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों से नाराज हो गया । वह 2003 की गर्मियों में अंतिम बार भोपाल आया और इसके पश्चात् उसने अपनी पत्नी और पुत्र की पूर्ण रूप से उपेक्षा की । वे प्रत्यर्थी की विधवा माता

के ऊपर निर्भर थे । प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ रहने के लिए तैयार थी । तथापि, अपीलार्थी उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए तैयार नहीं था । इसलिए प्रत्यर्थी-पत्नी ने पति के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी फाइल की ।

5. अपीलार्थी ने अपने विरुद्ध अभिकथित सभी आरोपों से इनकार किया और यह अभिवाक् किया कि उसने स्वयं ही एक्टिवा स्कूटर खरीदा था और उसने इसके लिए अपनी पत्नी को 35,000/- रुपए दिए थे । प्रत्यर्थी ने उसे तारीख 12 मई, 2003 को गर्भवती होने के बारे में बताया था । वह बच्चा गिराना चाहती थी । अपीलार्थी ने उसे ऐसा करने से रोका था । प्रत्यर्थी तारीख 16 जुलाई, 2003 को अपने भाई के साथ भोपाल गई थी । वह रतलाम में अपने बच्चे को जन्म देने के लिए तैयार नहीं थी । अत: अपीलार्थी ने उसे 15,000/- रुपए दिए और तत्पश्चात् 8,000/- रुपए दिए । तारीख 28 दिसंबर, 2003 को एक पुत्र उत्पन्न हुआ था तथापि, प्रत्यर्थी ने उसे इस बारे में सूचना नहीं दी । वह तारीख 29 दिसंबर, 2003 को भोपाल पहुंचा था । वह वहां तारीख 31 दिसंबर, 2003 तक रूका था । उसके बावजूद प्रत्यर्थी ने उसके विरुद्ध भरणपोषण की अर्जी फाइल की । वह अपीलार्थी को उसके माता-पिता से पृथक् रहने के लिए मजबूर करती थी । वह इसके लिए तैयार नहीं था । अत: प्रत्यर्थी ने उसके विरुद्ध मिथ्या अभिकथन किए । वह अपनी इच्छानुसार उसके माता-पिता के मकान से अलग रहना चाहती थी । उसने किसी उचित कारण के बिना अपीलार्थी के वैवाहिक जीवन को बरबाद कर दिया है । अत: अपीलार्थी के अनुसार प्रत्यर्थी हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन डिक्री प्राप्त करने की हकदार नहीं है ।

6. विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पत्नी के हक में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जी मंजूर कर ली । विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलार्थी पिछले कुछ वर्षों से सतत् रूप से अपनी पत्नी और पुत्र की जानबूझकर उपेक्षा कर रहा है । अत: अपीलार्थी को यह निदेश दिया गया था कि वह अपनी पत्नी और पुत्र को अपने साथ रखे ।

7. अपीलार्थी ने उपर्युक्त निष्कर्षों के विरुद्ध इस आधार पर यह

अपील फाइल की है कि प्रत्यर्थी के अभिकथन मिथ्या हैं । विचारण न्यायालय ने गलत रूप से इस तथ्य की उपेक्षा की है कि प्रत्यर्थी स्वयं ही नवंबर, 2003 में अपनी ससुराल छोड़कर चली गई थी । दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन 7 वर्ष के पश्चात् फाइल किया गया है । विचारण न्यायालय ने यह गलत अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी ने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को अपीलार्थी के पुत्र को जन्म दिया था जो स्वयं प्रत्यर्थी के कथन के प्रतिकूल है । प्रत्यर्थी अपीलार्थी को उसके माता पिता से पृथक् रहने के लिए मजबूर कर रही थी । अतः उसने अपीलार्थी के विरुद्ध दहेज की मांग के संबंध में मिथ्या शिकायत संस्थित की । प्रत्यर्थी के कुटुंब की वित्तीय स्थिति अच्छी नहीं है । इसलिए विवाह रतलाम में हुआ था और इसलिए खर्चे स्वयं अपीलार्थी द्वारा उठाए गए थे । प्रत्यर्थी एक शिक्षित महिला है जो स्नातकोत्तर है । उसने स्वयं ही अपने पति के प्रति अपने वैवाहिक कर्तव्यों को त्याग दिया है । उसने अपने पति के साथ रहने से इनकार कर दिया है । उसने शिमला में अपीलार्थी के साथ शारीरिक संबंध बनाने से भी इनकार कर दिया था । अपीलार्थी ने अनेक अवसरों पर प्रत्यर्थी को रतलाम अपने साथ ले जाने का प्रयास किया तथापि, प्रत्यर्थी उसके साथ रहने के लिए तैयार नहीं थी, इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह गलत अभिनिर्धारित किया है कि वह अपीलार्थी के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री प्राप्त करने की हकदार है । अपीलार्थी ने उपर्युक्त आधारों पर उपर्युक्त आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने का अनुरोध किया है । अपीलार्थी ने इस बात पर भी बल दिया है कि उसके आवेदन पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ख के अधीन विचार किया जाए ।

8. हमारे समक्ष अपीलार्थी ने स्वयं ही अपने मामले में विस्तार से बहस की और कतिपय विधिक मामलों का निर्देश किया ।

9. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी की दलीलों का विरोध करते हुए यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी के हक में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन ठीक ही डिक्री पारित की है और इसलिए यह अनुरोध किया है कि अपील खारिज की जाए ।

10. अभिलेख का परिशीलन किया गया ।

11. यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी पति और पत्नी हैं । उनका विवाह तारीख 4 अप्रैल, 2003 को हुआ था । प्रत्यर्थी ने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को अपने माता-पिता के मकान पर अपने पुत्र को जन्म दिया था । प्रत्यर्थी का यह कथन कि बच्चे का जन्म शल्यक्रिया द्वारा हुआ था, उसकी प्रतिपरीक्षा में अनाक्षेपित रहा है । गर्भ धारण की अवधि स्वत: यह साबित करती है कि पत्नी ने विवाह के तुरन्त पश्चात् गर्भधारण कर लिया था । हमारे मतानुसार अपीलार्थी का यह अभिकथन कि प्रत्यर्थी ने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने से इनकार कर दिया था, अविश्वसनीय प्रतीत होता है ।

12. यह भी अविवादित है कि प्रत्यर्थी तारीख 12 जुलाई, 2003 को सावन पूजा करने के लिए अपने माता-पिता के मकान पर गई थी । अपीलार्थी ने इस बात को आक्षेपित नहीं किया है कि कुटुंब की परंपरा के अनुसार प्रथम बच्चे का जन्म प्रत्यर्थी के माता-पिता के मकान पर होना था । प्रत्यर्थी के अनुसार अपीलार्थी ने उसके उपचार के चिकित्सीय खर्चे नहीं उठाए थे । हमें यह प्रतीत होता है कि इस संबंध में उसका साक्ष्य अखंडनीय रहा है । अपीलार्थी ने यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज या कोई बिल फाइल नहीं किया है कि सभी खर्चे उसके द्वारा संदत्त किए गए थे । अपीलार्थी का इस प्रकार का आचरण अपीलार्थी के स्वभाव को उपदर्शित करता है । वह धन बचाना चाहता था और उसने अपना भार अपनी ससुराल वालों पर डाल दिया था । प्रत्यर्थी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने तारीख 28 दिसंबर, 2003 को बच्चे के जन्म के बारे में अपीलार्थी और उसकी बहन को रात्रि में टेलीफोन द्वारा सूचना दी थी । अपीलार्थी अगले दिन भोपाल आया था तथापि, वह अपने साले (ब्रदर-इन-ला) से नाराज था कि उन्होंने बच्चे के जन्म के बारे में उसे समुचित रूप से सूचित नहीं किया था । इसके पश्चात् अपीलार्थी रतलाम वापस चला गया था और उसके पश्चात् वह कभी भी अपनी पत्नी और बच्चे को रतलाम ले जाने के लिए भोपाल नहीं आया । तारीख 10 जुलाई, 2005 को प्रत्यर्थी अपनी बड़ी बहन, अपने बड़े

बहनोई, छोटी बहन और छोटे बहनोई के साथ अपनी ससुराल गई थी तथापि, अपीलार्थी के माता-पिता ने उन्हें घर में घुसने से रोक दिया । प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथन किया है कि उसने अपीलार्थी से सम्पर्क करने का प्रयास किया था, किन्तु अपीलार्थी ने उसकी उपेक्षा करने का प्रयत्न किया । प्रत्यर्थी के नातेदार कई बार अपीलार्थी से मिलने रतलाम गए किन्तु उसने यह कहा कि वह प्रत्यर्थी को अपने साथ नहीं रखना चाहता है ।

13. अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी द्वारा अपने और प्रत्यर्थी के बीच मामले में सुलह कराने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए । अपीलार्थी द्वारा हमारे समक्ष दी गई दलील से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि वह अपनी पत्नी को किसी भी प्रकार से अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं है । उसने बल देकर यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्य सही नहीं हैं । इससे यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी केवल अपने अहम के कारण अपनी पत्नी को छोड़ने पर अमादा है । प्रत्यर्थी ने स्वयं और अपने माता-पिता द्वारा साथ रहने के लिए अनेकों बार अपीलार्थी से सम्पर्क करने का प्रयास किया था ।

14. अपीलार्थी ने लगभग 92 पृष्ठों की लिखित दलीलें फाइल की हैं । यदि हम उसकी दलीलों का सार बताएं तो संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जब पति-पत्नी साढ़े तीन मास साथ-साथ रहे थे तो अपीलार्थी के अनुसार प्रत्यर्थी-पत्नी ने सदैव ही उसे प्रताड़ित किया । अपीलार्थी ने इस संबंध में यह अभिकथन किया है कि उसने प्रत्यर्थी को एक्टिवा स्कूटर खरीदने के लिए धनराशि दी थी । स्कूटर प्रत्यर्थी द्वारा भोपाल में खरीदा गया था और इसके पश्चात् उसे भोपाल से रतलाम ले जाया गया था । हमने इस अभिकथन के संबंध में दोनों पक्षकारों के परिसाक्ष्य की परीक्षा की और हमें यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने यह मिथ्या अभिकथन किया है कि स्कूटर उसके द्वारा खरीदा गया था क्योंकि यदि वह अपनी पत्नी के लिए स्कूटर खरीदना चाहता था तो वह भोपाल से स्कूटर खरीदने के बजाय रतलाम में ही स्कूटर खरीदता और तत्पश्चात् रतलाम में अपने घर ले जाता । स्कूटर अभी भी रतलाम में

उसके कब्जे में है । अपीलार्थी के आचरण से यह उपदर्शित होता है कि वह इस तथ्य को छुपाना चाहता था कि उपर्युक्त स्कूटर उसकी ससुराल वालों द्वारा खरीदा गया था और इस प्रकार स्कूटर का खर्चा अपीलार्थी द्वारा संदत्त नहीं किया गया था । हमारा यह मत है कि अपीलार्थी की मांग पर स्कूटर प्रत्यर्थी के कुटुंब के सदस्यों द्वारा उसे तोहफ़े में दिया गया था ।

15. अपीलार्थी ने दलीलों के दौरान इस बात से इनकार किया है कि उसके पुत्र का जन्म उनके विवाह-बंधन से हुआ था । उसके द्वारा किया गया ऐसा इनकार उसके न्यायालय में किए गए कथन के प्रतिकूल है । हमारे मतानुसार इस प्रकार के आचरण से भी विवक्षित रूप से यह उपदर्शित होता है कि उसने अपने स्वयं के बच्चे के भरणपोषण के लिए स्वयं को उस दायित्व से बचाने के लिए स्वयं अपने पुत्र के पैतृत्व के संबंध में आधारहीन प्रश्न उठाए हैं । अपीलार्थी के इस आचरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती जिससे स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि वह अपनी पत्नी और अपने पुत्र के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए दिलचस्पी नहीं रखता है ।

16. **गीताबाई (श्रीमती)** बनाम **राजा राम लोधी**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के स्पष्टीकरण के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री की मंजूरी के प्रयोजन के लिए यह साबित किया जाना चाहिए कि दूसरे पक्षकार ने साथ रहने से इनकार कर दिया है और ऐसा इनकार युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना होना चाहिए ।

17. इस संबंध में दोनों पक्षकारों के परिसाक्ष्य के आधार पर हमें यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने कभी भी अपनी पत्नी और पुत्र के लिए कोई सहारा, भरणपोषण प्रभार और चिकित्सीय खर्चे उठाने का प्रयास नहीं किया । अपीलार्थी ने खुले न्यायालय में यह साबित करने का प्रयत्न किया है कि उसकी पत्नी अपनी इच्छा के अनुसार उसके साथ जाने के लिए तैयार नहीं थी । अपीलार्थी द्वारा अपनी पत्नी और पुत्र को

---

[1] 1994 की प्रथम अपील सं. 155.

छोड़ने के लिए यह एक पर्याप्त आधार नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अच्छी और कुछ बुरी बातें होती हैं । विवाह के पश्चात् यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन साथी की अच्छी और बुरी आदतों दोनों को ही स्वीकार करना चाहिए । यदि उनमें से कोई एक दूसरे को मजबूर करता है तो पति और पत्नी के बीच इस प्रकार के विवाद उठना स्वाभाविक है ।

18. अपीलार्थी ने अपने और प्रत्यर्थी के बीच बातचीत को साबित करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65(ख) के अधीन अपने आवेदन को स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि आक्षेपित निर्णय तारीख 10 सितंबर, 2015 को पारित किया गया है । उपर्युक्त बातचीत तारीख 18 जनवरी, 2004 और तारीख 3 नवंबर, 2011 को अभिलिखित (रिकार्ड) की गई थी । अपीलार्थी ने बातचीत की लिखित प्रतिलिपि अपने आवेदन के साथ फाइल की है । उपर्युक्त प्रति के परिशीलन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी युक्तिपूर्वक अपनी पत्नी के दोषों के लिए और दूसरी ओर स्वयं को बचाने के प्रयास के लिए अपनी पत्नी को फंसाना चाहता था । बातचीत से यह भी उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपनी पिछली गलतियों को भूलकर अपीलार्थी-पति के साथ शांतिपूर्वक रहना चाहती थी । तथापि, अपीलार्थी सतत् रूप से प्रत्यर्थी की पूर्वतर गलतियों और पूर्व में की गई कमियों को प्रदर्शित करने का प्रयास कर रहा है । अपीलार्थी के इस प्रकार के आचरण से यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी ने कभी भी अपनी पत्नी को समझने और आपस में अपने विवादों को सुलझाने के लिए अपनी ओर से प्रयास नहीं किए । दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि वह अपने पुत्र की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता था और वह स्वयं ही उनसे पृथक् रहना चाहता था ।

19. हिन्दू विवाह अधिनियम का स्पष्टीकरण यह विहित करता है कि – जहां यह प्रश्न उठता है कि साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है । हिन्दू

विवाह अधिनियम की धारा 9 को अधिनियम की धारा 23 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जो न्यायालय को कतिपय मामलों के बारे में अपना समाधान करने के पश्चात् दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के बारे में जांच करने और अन्य बातों के साथ-साथ कोई डिक्री पारित करने के लिए कर्तव्याबद्ध करती है, अत: अर्जीदार को यह उपदर्शित करना चाहिए कि वह वैवाहिक साहचर्य को स्थापित करने के लिए और वैवाहिक अधिकारों और कर्तव्यों को पूरा करने के लिए सद्भाविक इच्छा रखता या रखती है ।

20. यह प्रतीत होता है कि पति या पत्नी का आचरण जो किसी एक या अन्य कारण से क्रूरता के अन्तर्गत या किसी अन्य वैवाहिक अपराध के अन्तर्गत आता है, पति या पत्नी को छोड़ने के लिए या साथ न रहने के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु प्रदत्त करता है और यह वर्तमान धारा के अधीन प्रत्यास्थापन के लिए वाद में प्रतिरक्षा प्रदत्त करता है । यह बात कि क्या किसी भी पक्षकार के पास दूसरे को छोड़ने के लिए या पृथक् रहने के लिए कोई युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, इस बात पर निर्भर करती है कि शिकायत किया गया आचरण गंभीर है या गंभीर प्रकृति का है । यह अभिवचन कि प्रत्यर्थी के पास आवेदक के साथ न रहने के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु था, अन्तर्वलित तथ्यों के जांच का विषय होना चाहिए । प्रत्येक मामला अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और इसलिए यह संभव नहीं है कि इस बारे में नि:शेष कथन किया जाए कि क्या बात 'युक्तियुक्त प्रतिहेतु', गठित कर सकती है और क्या नहीं । उपर्युक्त सिद्धांतों को स्वीकार किया गया है और वर्तमान धारा के अधीन आवेदक को अनुतोष इस आधार पर मंजूर नहीं किया गया था कि दूसरे पक्षकार ने युक्तियुक्त प्रतिहेतु के आधार पर आवेदक के साहचर्य से प्रत्याहरण कर लिया है । वर्तमान मामले में हमें यह प्रतीत नहीं होता कि अपीलार्थी के पास प्रत्यर्थी के साथ न रहने के लिए कोई युक्तियुक्त प्रतिहेतु है ।

21. पति पत्नी के बीच पत्र-व्यवहार का या बातचीत का प्राय: दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के अभिवाक् के समर्थन में या विरोध में अवलंब लिया जाता है । तथ्यों का परिशीलन परिस्थितियों को ध्यान

में रखते हुए, चिंता और तत्समय पर पति या पत्नी की मानसिक अवस्था और पक्षकारों के बीच आरंभ से ही उस स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए जो उनके कथनों में, शिकायतों में और उस समय पर जब आरोप लगाए गए हैं, अवस्थित हैं । पति और पत्नी के बीच ऐसी बातचीत का उन प्रकथनों को दृष्टिगत करते हुए महत्व हो सकता है जब वे किए गए हैं और न्यायालय यह आदेश कर सकता है कि ऐसी बातचीत, ऐसी बातचीत में किए गए अभिकथनों की सत्यता की परीक्षा करने के लिए न्यायालय के समक्ष रखी जानी चाहिए ।

22. **सुमन सिंह** बनाम **संजय सिंह**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पूर्वतर लंबी अवधि में कतिपय यदा-कदा घटनाएं और वह भी पक्षकारों के आपस में समझौतापूर्ण व्यवहार के कारण क्षमा की गई पाई गई हों, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1) (i-क) के अर्थान्तर्गत क्रूरता का कार्य गठित नहीं कर सकतीं क्योंकि दोनों ही के बीच मौखिक कहा-सुनी होती है और ऐसी घटनाएं क्रूरता गठित करने के लिए तब तक पर्याप्त नहीं होंगी जब तक वह इस जैसी प्रकृति की घटना द्वारा समर्थित न हो ।

23. अपीलार्थी-पति द्वारा किए गए सभी अभिकथनों और प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा किए गए इनकार, इसी प्रकार प्रत्यर्थी-पत्नी के आरोप और अपीलार्थी-पति द्वारा किए गए इनकार से यह उपदर्शित होता है कि सार्थक प्रयासों द्वारा उनके विवाद को सुलझाया जा सकता है । उनके विवाह के पश्चात् उनके बीच मामूली और छोटे-मोटे विवाद हुए हैं जिन्हें आपसी समझबूझ द्वारा सुलझाए जाने की आवश्यकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी की मुख्य शिकायत यह है कि वह अपने ससुराल वालों के व्यवहार से आहत हुआ था । तथापि, हमें यह प्रतीत होता है कि ऐसी कोई घटना नहीं हुई जहां प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार किया हो या अपीलार्थी के प्रति उसका व्यवहार क्रूरतापूर्ण रहा हो ।

24. दहेज की मांग के अभिकथन के संबंध में प्राय: यह देखा जाता है कि वैवाहिक विवादों के मामले में जहां पक्षकार लंबी अवधि से पृथक्-

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1316 = (2017) 4 एस. सी. सी. 85.

पृथक् रह रहे हों, वे अपने पति या पत्नी को मिथ्या आधारों पर आरोपित करते हैं ।

25. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सुमन सिंह** बनाम **संजय सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि साक्ष्य से यह साबित होता है कि पति ने किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना अपनी पत्नी का साहचर्य छोड़ दिया है वहां पत्नी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री के लिए हकदार है । उच्चतम न्यायालय ने उक्त मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :-

> "हमें यह आशा और विश्वास है कि पक्षकार एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्वों को महसूस करेंगे और वे अपनी बढ़ती आयु की पुत्रियों के प्रति माता और पिता के रूप में अपने संयुक्त दायित्वों को भी महसूस करेंगे । अतः दोनों को ही अपने पूर्व कार्यों और कड़वे अनुभवों को पूर्ण रूप से भूला देना चाहिए और साथ-साथ रहकर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनकी पुत्रियां अपने-अपने जीवन में बेहतर तौर पर स्थापित हों । हम यह महसूस करते हैं कि उनका मिलन आगे उनके कुटुंब के सभी सदस्यों के हित में होगा और उनके जीवन में शांति और सौहार्द और खुशियां लाएगा । हमें यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सरकारी विभाग में 'केयरटेकर' के रूप में कार्य करता है । (आवेदन का पैरा 4 देखें) । अतः उसे अपने कुटुंब का भी 'केयरटेकर' होना चाहिए जो कि उसका प्रथम दायित्व भी है और इसके साथ ही साथ उसे अपने कुटुंब के भरणपोषण के लिए अपने सरकारी कर्तव्यों को भी पूरा करना चाहिए ।"

26. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह निष्कर्ष है कि निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए अपील में कोई आधार नहीं बनता है । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

महः

---

(2019) 1 सि. नि. प. 399 मेघालय

# सोलोमन लेमकांग

बनाम

# भारत संघ और अन्य

तारीख 26 जुलाई, 2018

**मुख्य न्यायमूर्ति मोहम्मद याकूब मीर**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित सेवा नियमों का मूल नियम 17(1)] – सीमा सुरक्षा बल में हैड कांस्टेबल के रूप में चयन – याची को सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में तकनीकी त्याग-पत्र देने के पश्चात् सातवीं बटालियन में समायोजित किया जाना – सात मास के पश्चात् याची को पुन: सत्रहवीं बटालियन में भेजा जाना – याची की नियुक्ति 15 नवंबर, 2012 की बजाय तारीख 14 अगस्त, 2017 से संगणित की जानी – याची द्वारा नियुक्ति की तारीख को चुनौती दी जानी – ऐसा आदेश विधिविरुद्ध है अत: याची को उसकी मूल नियुक्ति की तारीख से ज्येष्ठता संबंधी फायदा तथा अन्य मीमांसात्मक फायदे तथा तारीख 14 अगस्त, 2014 से समस्त धनीय फायदे दिए जाने चाहिए ।**

याची ने वर्ष 2011 में प्रत्यर्थी द्वारा जारी उस विज्ञापन सूचना के जवाब में आवेदन किया था जिसके द्वारा विभिन्न पदों के लिए सीधे और विभागीय अभ्यर्थियों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे जिसमें हैड कांस्टेबल (लिपिकीय वर्ग) के पद भी सम्मिलित थे । उसका चयन हैड कांस्टेबल (लिपिक वर्ग) के रूप में किया गया था और उसे पश्चिमी बंगाल के तल्लीगुड़ी की सीमा सुरक्षा बल की सातवीं बटालियन में समायोजित किया गया था । उसने सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में तकनीकी त्याग पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात् पश्चिमी बंगाल की सीमा सुरक्षा बल की तल्लीगड़ी स्थित सातवीं बटालियन में पदभार ग्रहण किया था तथापि, उसके हक में नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया गया । सात मास गुज़र जाने के पश्चात् उसे सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में वापस पदभार ग्रहण करने का निदेश दिया गया था । उसने उक्त आदेश से व्यथित होकर 2012 की रिट याचिका (सिविल) सं. 323

फाइल की थी जिसे इस न्यायालय द्वारा तारीख 15 अप्रैल, 2014 को दिए गए विस्तृत निर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया था और जिसके द्वारा तारीख 15 नवंबर, 2012 के आक्षेपित पत्र को अपास्त करते हुए प्रत्यर्थियों को हैड कांस्टेबल (लिपिक वर्ग) के पद जिसके लिए उसका चयन किया गया था, पर पदभार ग्रहण करने के लिए अनुज्ञात करने का निदेश दिया गया था । इसके अनुपालन में याची को सीमा सुरक्षा बल में हैड कांस्टेबल (लिपिक) के रूप में इस शर्त के साथ नियुक्ति दी गई कि उसकी नियुक्ति की तारीख पदभार ग्रहण करने की तारीख से अर्थात् तारीख़ 14 अगस्त, 2014 से संगणित की जाएगी । याची की शिकायत यह है कि नियुक्ति की प्रभावी तारीख 25 अप्रैल, 2012 के रूप में दी जानी चाहिए थी जिसमें चयन के पश्चात् उसने सीमा सुरक्षा बल (तल्लीगुड़ी) पश्चिमी बंगाल की सातवीं बटालियन में पदभार ग्रहण किया था । तथापि, उसके किसी दोष के बिना उसे उसके चयन में प्राप्त होने वाले फायदों से वंचित किया गया है । चयन पर नियुक्ति से वंचन को न्यायिक हस्तक्षेप करके अर्थात् 2012 की रिट याचिका (सिविल) सं. 323 में तारीख 15 अप्रैल, 2015 को दिए गए निर्णय के निबंधनों में सुधार किया गया था । तथापि, निर्णय के अनुपालन में जारी नियुक्ति आदेश में इस आशय की एक शर्त निगमित की गई कि नियुक्ति पदभार ग्रहण करने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014 से संगणित की जाएगी जो कि अनपेक्षित है । अतः वर्तमान याचिका फाइल की गई है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – वर्तमान मामले में अवधारण के लिए एकमात्र प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या नियुक्ति का आदेश तारीख 25 अप्रैल, 2012 से प्रभावी होना चाहिए जब याची ने चयन के पश्चात् सीमा सुरक्षा बल, तल्लीगुड़ी, पश्चिमी बंगाल की सातवीं बटालियन में पदभार ग्रहण किया था ? इसका उत्तर सकारात्मक होना चाहिए क्योंकि याची का किसी प्रकार का कोई दोष नहीं बताया गया है । उसने विभागीय अभ्यर्थी के रूप में चयन के तुरन्त पश्चात् सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में तकनीकी त्याग पत्र दे दिया था और इसके पश्चात् समय गंवाए बिना सीमा सुरक्षा बल, तल्लीगुड़ी, पश्चिमी बंगाल की सातवीं बटालियन में जहां उसे समायोजित किया गया था, पदभार ग्रहण कर लिया था । जब एक बार हैड कांस्टेबल

के रूप में नियुक्ति न देकर उसके मूल विभाग जिसमें उसका सम्यकत: चयन किया गया था, के लिए वापस भेजने का आदेश अपास्त कर दिया गया था और नियुक्ति दे दी गई थी तो वह याची के चयन की तारीख से प्रभावी होगा क्योंकि उसने सीमा सुरक्षा बल, तल्लीगुड़ी, पश्चिमी बंगाल की सातवीं बटालियन में पदभार ग्रहण कर लिया था, जहां उसे समायोजित किया गया था । याची विभागीय अभ्यर्थी के रूप में कांस्टेबल के रूप में कार्य कर रहा था और जब उसे किसी कारण के बिना नियुक्ति नहीं दी गई तो उसने अपने मूल विभाग में वापस पदभार ग्रहण कर लिया था जहां उसने नियुक्ति आदेश के अनुसरण में पद ग्रहण करने तक अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया था । याची के अधिकारों के संरक्षण के लिए यह शर्त निगमित की गई थी कि नियुक्ति तारीख 14 अगस्त, 2014 से संगणित होगी जो कि तारीख 25 अप्रैल, 2012 से मीमांसात्मक होगी और सीमा सुरक्षा बल हैड कांस्टेबल (लिपिक) के रूप में पदभार ग्रहण होने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014 से धनीय होगी । तथ्यों और विधि को दृष्टिगत करते हुए अंतिम विश्लेषण के रूप में वर्तमान याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और इसलिए इसे मंजूर किया जाता है और आक्षेपित आदेश में इस आशय की शर्त सं. 2 कि 'इस इकाई में पदग्रहण करने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014' विधि के अनुरूप न होने के कारण इसकी अनदेखी की जाएगी । याची की नियुक्ति ज्येष्ठता के प्रयोजन के लिए और अन्य मीमांसात्मक फायदों के लिए तारीख 25 अप्रैल, 2012 से और धनीय फायदों के लिए तारीख 14 अगस्त, 2014 से अर्थात् सीमा सुरक्षा बल में हैड कांस्टेबल (लिपिक) के रूप में पद भार ग्रहण करने की तारीख से संगणित की जाएगी और नियुक्ति आदेश में शर्त को तद्नुसार पढ़ा जाएगा । (पैरा 5, 6 और 10)

**अनुसरित निर्णय**

पैरा

[2015] (2015) 1 एम. जे. 354 :
**भारत संघ और अन्य** बनाम **रामसुख पाल सिंह** ; 8

[1991] (1991) 4 एस. सी. सी. 109 :
**भारत संघ और अन्य** बनाम **के. वी. जानकी रमण और अन्य** । 7

**आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 64.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

| | |
|---|---|
| **याची की ओर से** | श्री आर. गुरंग |
| **प्रत्यर्थियों की ओर से** | श्री के. पाल और सुश्री बी. खरवलांग |

**मुख्य न्यायमूर्ति मोहम्मद याकूब मीर** – याची का यह पक्षकथन है कि उसे कांस्टेबल/जी. डी. के रूप में नामांकित करते हुए सीमा सुरक्षा बल की 17वीं बटालियन में नियुक्त (तैनात) किया गया था ।

2. याची ने वर्ष 2011 में प्रत्यर्थी द्वारा जारी उस विज्ञापन सूचना के जवाब में आवेदन किया था जिसके द्वारा विभिन्न पदों के लिए सीधे और विभागीय अभ्यर्थियों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे जिसमें हैड कांस्टेबल (लिपिकीय वर्ग) के पद भी सम्मिलित थे । उसका चयन हैड कांस्टेबल (लिपिक वर्ग) के रूप में किया गया था और उसे पश्चिमी बंगाल के तल्लीगुड़ी की सीमा सुरक्षा बल की सातवीं बटालियन में समायोजित किया गया था । उसने सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में तकनीकी त्याग पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात् पश्चिमी बंगाल की सीमा सुरक्षा बल की तल्लीगड़ी स्थित सातवीं बटालियन में पदभार ग्रहण किया था तथापि, उसके हक में नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया गया । सात मास गुजर जाने के पश्चात् उसे सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में वापस पदभार ग्रहण करने का निदेश दिया गया था । उसने उक्त आदेश से व्यथित होकर 2012 की रिट याचिका (सिविल) सं. 323 फाइल की थी जिसे इस न्यायालय द्वारा तारीख 15 अप्रैल, 2014 को दिए गए विस्तृत निर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया था और जिसके द्वारा तारीख 15 नवंबर, 2012 के आक्षेपित पत्र को अपास्त करते हुए प्रत्यर्थियों को हैड कांस्टेबल (लिपिक वर्ग) के पद जिसके लिए उसका चयन किया गया था, पर पदभार ग्रहण करने के लिए अनुज्ञात करने का निदेश दिया गया था । इसके अनुपालन में याची को सीमा सुरक्षा बल में हैड कांस्टेबल (लिपिक) के रूप में इस शर्त के साथ नियुक्ति दी गई कि उसकी नियुक्ति की तारीख पदभार ग्रहण करने की तारीख से अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014 से संगणित की जाएगी ।

3. उपर्युक्त नियुक्ति के आधार पर पदभार ग्रहण करने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014 से संगणित करते हुए हैड कांस्टेबल (लिपिक वर्ग) के लिए जारी की गई ज्येष्ठता सूची में उसका नाम क्रम सं. 1415 पर अंकित किया गया है ।

4. याची की शिकायत यह है कि नियुक्ति की प्रभावी तारीख 25 अप्रैल, 2012 के रूप में दी जानी चाहिए थी जिसमें चयन के पश्चात् उसने सीमा सुरक्षा बल (तल्लीगुड़ी) पश्चिमी बंगाल की सातवीं बटालियन में पदभार ग्रहण किया था । तथापि, उसके किसी दोष के बिना उसे उसके चयन में प्राप्त होने वाले फायदों से वंचित किया गया है । चयन पर नियुक्ति से वंचन को न्यायिक हस्तक्षेप करके अर्थात् 2012 की रिट याचिका (सिविल) सं. 323 में तारीख 15 अप्रैल, 2015 को दिए गए निर्णय के निबंधनों में सुधार किया गया था । तथापि, निर्णय के अनुपालन में जारी नियुक्ति आदेश में इस आशय की एक शर्त निगमित की गई कि नियुक्ति पदभार ग्रहण करने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014 से संगणित की जाएगी जो कि अनपेक्षित है । अत: वर्तमान याचिका फाइल की गई है ।

5. तथ्यों को स्वीकार किया गया है । वर्तमान मामले में अवधारण के लिए एकमात्र प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या नियुक्ति का आदेश तारीख 25 अप्रैल, 2012 से प्रभावी होना चाहिए जब याची ने चयन के पश्चात् सीमा सुरक्षा बल, तल्लीगुड़ी, पश्चिमी बंगाल की 7वीं बटालियन में पदभार ग्रहण किया था ? इसका उत्तर सकारात्मक होना चाहिए क्योंकि याची का किसी प्रकार का कोई दोष नहीं बताया गया है । उसने विभागीय अभ्यर्थी के रूप में चयन के तुरन्त पश्चात् सीमा सुरक्षा बल की सत्रहवीं बटालियन में तकनीकी त्याग पत्र दे दिया था और इसके पश्चात् समय गंवाए बिना सीमा सुरक्षा बल, तल्लीगुड़ी, पश्चिमी बंगाल की सातवीं बटालियन में जहां उसे समायोजित किया गया था, पदभार ग्रहण कर लिया था । जब एक बार हैड कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति न देकर उसके मूल विभाग जिसमें उसका सम्यकत: चयन किया गया था, के लिए वापस भेजने का आदेश अपास्त कर दिया गया था और नियुक्ति दे दी गई थी तो वह याची के चयन की तारीख से प्रभावी होगा क्योंकि उसने सीमा सुरक्षा बल, तल्लीगुड़ी, पश्चिमी बंगाल की सातवीं

बटालियन में पद भार ग्रहण कर लिया था, जहां उसे समायोजित किया गया था । याची विभागीय अभ्यर्थी के रूप में कांस्टेबल के रूप में कार्य कर रहा था और जब उसे किसी कारण के बिना नियुक्ति नहीं दी गई तो उसने अपने मूल विभाग में वापस पदभार ग्रहण कर लिया था जहां उसने नियुक्ति आदेश के अनुसरण में पद ग्रहण करने तक अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया था ।

6. याची के अधिकारों के संरक्षण के लिए यह शर्त निगमित की गई थी कि नियुक्ति तारीख 14 अगस्त, 2014 से संगणित होगी जो कि तारीख 25 अप्रैल, 2012 से मीमांसात्मक होगी और सीमा सुरक्षा बल हैड कांस्टेबल (लिपिक) के रूप में पदभार ग्रहण होने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014 से धनीय होगी ।

7. **भारत संघ और अन्य** बनाम **के. वी. जानकी रमण और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय में अधिकथित सिद्धांत उपर्युक्त मत का समर्थन करते हैं । यहां उक्त निर्णय के पैरा 25 और पैरा 26 के प्रारंभिक भाग को उद्धृत करना उपयोगी होगा, जो इस प्रकार है :–

> "25. हम प्राधिकारियों की दलीलों से सहमत नहीं हैं । 'कार्य नहीं तो वेतन नहीं' का सामान्य नियम ऐसे मामलों में लागू नहीं होता है जैसाकि वर्तमान मामला है, जहां वह कार्य करने के लिए सदैव ही इच्छुक रहा तथापि, प्राधिकारियों ने उसके किसी दोष के बिना उसे कार्य नहीं करने दिया । यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां कर्मचारी स्वयं अपने कारणों से कार्य करने से विरत रहा हो और कार्य करने के लिए उससे कहा गया हो । इसी कारण से मूल नियम 17(1) भी ऐसे मामलों में लागू नहीं होगा ।
>
> 26. अतः हम मौटे तौर पर अधिकरण के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि जहां किसी कर्मचारी को पूर्ण रूप से कार्य न करने दिया गया हो अर्थात् तद्द्वारा उसे किसी भी प्रकार से दोषी न पाया गया हो और उस पर किसी दोष के लिए शास्ति अधिरोपित न की गई हो तो उसे उस तारीख से अन्य फायदों सहित उच्चतर पद के लिए वेतन का फायदा दिया जाना चाहिए जिस पर उसे

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 109.

सामान्यतया प्रोन्नत किया गया है तथापि, अनुशासनात्मक/दांडिक कार्यवाहियां.....।"

8. इस न्यायालय की न्यायपीठ ने **भारत संघ और अन्य** बनाम **रामसुख पाल सिंह**[1] (2014 की रिट अपील सं. 6, तारीख 4 दिसंबर, 2014 को विनिश्चित) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए ऊपर निर्दिष्ट निर्णय का अवलंब लेते हुए इसी आधार पर विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय की पुष्टि की थी और वर्तमान रिट याचिका में भी वही फायदा दिया जाना चाहिए ।

9. याची का मामला भी समान रूप से ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों में यथा अधिकथित सिद्धांत द्वारा विनियमित होता है ।

10. ऊपर अभिकथित तथ्यों और विधि को दृष्टिगत करते हुए अंतिम विश्लेषण के रूप में वर्तमान याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और इसलिए इसे मंजूर किया जाता है और आक्षेपित आदेश में इस आशय की शर्त सं. 2 की 'इस इकाई में पदग्रहण करने की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 2014' विधि के अनुरूप न होने के कारण इसकी अनदेखी की जाएगी । याची की नियुक्ति ज्येष्ठता के प्रयोजन के लिए और अन्य मीमांसात्मक फायदों के लिए तारीख 25 अप्रैल, 2012 से और धनीय फायदों के लिए तारीख 14 अगस्त, 2014 से अर्थात् सीमा सुरक्षा बल में हैड कांस्टेबल (लिपिक) के रूप में पद भार ग्रहण करने की तारीख से संगणित की जाएगी और नियुक्ति आदेश में शर्त को तद्नुसार पढ़ा जाएगा ।

11. याचिका सफल होती है और उपर्युक्त निबंधनों में निपटाई जाती है ।

याचिका मंजूर की गई ।

मह.

---

[1] (2015) 1 एम. जे. 354.

(2019) 1 सि. नि. प. 406 राजस्थान

# दीप माला गौत्तम और एक अन्य

बनाम

# राजस्थान राज्य द्वारा प्रमुख सचिव, पावर और ऊर्जा विभाग

तारीख 2 मई, 2018

**न्यायमूर्ति एम. एन. भंडारी और न्यायमूर्ति दिनेश चन्द्र सोमानी**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 16 (2) और 15 (3) – लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता और लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध – सरकारी सेवाओं में महिलाओं को आरक्षण – अनुच्छेद 16(2) लिंग के आधार पर सेवा आरक्षण को वर्जित करता है और अनुच्छेद 15(3) भी इस संबंध में कोई सहायता नहीं कर सकता चूंकि राज्य की सेवा में सभी आरक्षण केवल अनुच्छेद 16 के अधीन ही प्रदान किए जा सकते हैं ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 16(2) और 15(3) – लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता और लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध – सरकारी सेवाओं में महिलाओं का आरक्षण – महिलाएं समाज की असुरक्षित भाग हैं, वे अपने सामाजिक वर्गों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अलाभकर स्थिति में हैं, अतः आरक्षण के लिए महिलाओं की नई कोटि सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ संविधान का संशोधन करके ही महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया जा सकता है ।**

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि राजस्थान राज्य विद्युत वितरण निगम लिमिटेड ने तकनीकी सहायकों के पदों के लिए आवेदन आमंत्रित किए । याचियों ने भी इस पद के लिए आवेदन किया और वे चयन प्रक्रिया के लिए उपस्थित हुई । किंतु याचियों को आरक्षण के अभाव में नियुक्ति प्राप्ति प्राप्त नहीं हो सकती । ऐसा इस कारणवश हुआ क्योंकि प्रत्यर्थियों ने तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा 1975 के तकनीकी कर्मकार सेवा विनियम के विनियम 4(सी)(1) को

प्रस्तापित कर दिया । तद्द्वारा महिलाओं के पक्ष में आरक्षण की व्यवस्था को समाप्त कर दिया । यदि प्रत्येक श्रेणी में पदों का 30 प्रतिशत आरक्षण महिला अभ्यर्थियों के पक्ष में दे दिया जाता तो याचियों को भी नियुक्ति प्राप्त हो जाती । तद्नुसार, याचियों ने तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश का अपास्त किए जाने और तकनीकी सहायकों के पदों पर उनकी नियुक्ति किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने हेतु प्रार्थना की । याचिका खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – उपरोक्त उद्धृत पैरा में उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि संविधान का अनुच्छेद 16(2) लिंग के आधार पर सेवा में आरक्षण को वर्जित करता है । इस निष्कर्ष को यह भी अभिलिखित किया गया है कि इस स्थिति में संविधान का अनुच्छेद 15(3) कोई सहायता नहीं कर सकता चूंकि राज्य के अधीन सेवा में सभी आरक्षण केवल अनुच्छेद 16 के अधीन ही किए जा सकते हैं, अतः लोक नियोजन में संविधान के अनुच्छेद 15 का प्रयोग स्वीकार नहीं किया गया है । संविधान का अनुच्छेद 16(1) के संदर्भ में आगे कोई मताभिव्यक्ति नहीं की गई है । यदि इस मामले में संविधान के सामंजस्य में कोई निष्कर्ष निकाला जाता है तो महिलाओं के लिए आरक्षण अनुच्छेद 16(2) का अतिलंघन होगा । तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की है कि महिलाएं समाज की असुरक्षित भाग हैं । वे अपने स्वयं के सामाजिक वर्ग में पुरूषों की अपेक्षा अधिक अलाभकर स्थिति में हैं । इस आधार पर आरक्षण पूर्णतया न्यायोचित होगा । हमारे द्वारा विचार किए जाने के लिए प्रश्न यह है कि क्या आरक्षण पूर्वोक्त अवलोकन के आधार पर दिया जा सकता है । हमारी राय में, इसे आरक्षण के लिए असुरक्षित वर्ग की नई कोटि सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ संविधान का संशोधन करके ऐसा किया जा सकता है और इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 16(2) का संशोधन किया जाना चाहिए । इसके अभाव में, महिलाओं के लिए आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 16(2) का अतिलंघन होगा जिसके लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट निबंधनों में निष्कर्ष

अभिलिखित किया जा चुका है जिसका अनदेखा नहीं किया जा सकता है । उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, जब तक संविधान पूर्वोक्त उद्धृत पैरा में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार संशोधित का संशोधन नहीं कर दिया जाता, कोई भी दावा या महिलाओं के पक्ष में आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 16(2) द्वारा बाधित होगा । उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 16(4) द्वारा इसको आच्छादित नहीं किया है चूंकि महिलाओं के लाभकर और अलाभकर वर्ग विद्यमान हैं, अतः यह संविधान के अनुच्छेद 16 के विरुद्ध होगा । उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, रिट याचिका में की गई प्रार्थना मंजूर नहीं की जा सकती । तथापि, हम प्रत्यर्थियों से सहमत नहीं हैं कि महिलाएं प्रश्नगत पद पर कार्य नहीं कर सकतीं, अतः पूर्वोक्त तर्क स्वीकार्य नहीं है चूंकि महिलाएं तकनीकी कार्य भी कर सकती हैं किन्तु ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, हम याचियों द्वारा की गई प्रार्थना को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है और लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता । (पैरा 13, 14, 15 और 16)

**निर्दिष्ट निर्णय**

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2017] | (2017) 9 एस. सी. सी. 478 में प्रकाशित : **डी. सरोजाकुमारी** बनाम **आर. हेलन थीलाकॉम और अन्य ;** | 7 |
| [2012] | रिट याचिका संख्या 2373/2012 : **रीना चौधरी** बनाम **जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड और अन्य ;** | 8 |
| [1993] | ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 477 में प्रकाशित : **इंदिरा साहनी और अन्य** बनाम **भारत संघ ।** | 3 |

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 12949.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

**याचियों की ओर से** श्री हनुमान चौधरी

**प्रत्यर्थियों की ओर से** श्री शैलेश प्रकाश शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. एन. भंडारी ने दिया ।

**न्या. भंडारी –** इस रिट याचिका द्वारा 1975 के तकनीकी कर्मकार सेवा विनियम (जिसे संक्षिप्त में "1975 का विनियम" कहा गया है) के विनियम 4(सी)(1) और तकनीकी सहायकों के पदों पर चयन को चुनौती दी गई है ।

2. राजस्थान राज्य विद्युत वितरण निगम लिमिटेड ने तकनीकी सहायक के लिए पद के आवेदन आमंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ एक विज्ञापन जारी किया । याचियों ने इस पद हेतु आवेदन किया और चयन के लिए उपस्थित हुए । किन्तु याची महिलाओं के पक्ष में आरक्षण के अभाव में नियुक्ति प्राप्त नहीं कर सकी । इसमें तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश के कारण दृष्टिगत हुआ जिसके द्वारा महिलाओं के पक्ष में आरक्षण वापस ले लिया था । प्रत्यर्थियों ने पहले महिलाओं के पक्ष में आरक्षण लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ एक प्रस्ताव पारित किया था, जैसी कि व्यवस्था राज्य सरकार द्वारा की गई है । ऐसा तारीख 4 अप्रैल, 2008 का आदेश पारित किए जाने के द्वारा किया गया । प्रत्यर्थियों ने तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा 1975 के विनियम के विनियम 4(सी)(1) को प्रतिस्थापित कर दिया, तद्द्वारा महिलाओं के पक्ष में आरक्षण वापस ले लिया गया । यदि आरक्षण प्रत्येक श्रेणी के पदों का 30 प्रतिशत का विस्तार करके महिला अभ्यर्थियों के पक्ष में आरक्षित कर दिया जाता है, तो याचियों को नियुक्ति प्राप्त हो जाएगी । तद्नुसार, तारीख 29 मार्च, 2012 को आदेश अपास्त किए जाने और तकनीकी सहायकों के पदों पर याचियों को नियुक्त किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने हेतु प्रार्थना की गई ।

3. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **इंदिरा साहनी और अन्य**

बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया गया है । इस मामले में महिलाओं अभ्यर्थियों के पक्ष में आरक्षण के विवाद्यक पर चर्चा की गई । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थियों को तारीख 4 अप्रैल, 2008 के पूर्ववर्ती आदेश के अनुसरण में आरक्षण प्रदान करने के पश्चात् नियुक्ति देने का निर्देश दिया जा सकता है ।

4. रिट याचिका का विरोध प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा किया गया । उन्होंने निवेदन किया कि याचियों ने आरक्षण की मांग करने के अपने मूल अधिकार को दर्शाए बिना तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को चुनौती दी है । महिलाओं के पक्ष मे आरक्षण का विरोध अन्यथा भी संविधान के अनुच्छेद 16(2) के अधीन किया गया है । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी को महिला अभ्यर्थियों के पक्ष में आरक्षण देने की बाध्यता के अधीन नहीं है । रिट याचिका के प्रत्युत्तर में, आरक्षण प्रदान किए जाने से के इनकार किए जाने का कारण तकनीकी काम के संदर्भ में दिया गया है जिसके लिए महिला अभ्यर्थी फिट नहीं हैं । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को दी गई चुनौती कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

5. यह भी कथन किया है यद्यपि याचियों ने पहले भी 2011 के पूर्व भर्ती के संदर्भ में एक समान लाभ के दावे हेतु एक रिट याचिका संख्या 2373/2012 फाइल की थी । रिट याचिका को विस्तृत चर्चा या बहस के पश्चात् खारिज कर दिया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि आरक्षण पालिसी या नीति का मामला है और भारत के संविधान में समर्थकारी उपबंध है अतः आरक्षण के लिए निर्देश प्राप्त करने हेतु रिट कायम रखे जाने योग्य नहीं है । पूर्ववर्ती रिट याचिका में असफल रहते हुए, याचियों ने अब तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश के निष्कर्ष को चुनौती दी है यद्यपि यह आदेश प्रश्नगत विज्ञापन के काफी पहले जारी किया था । याची वैसे भी चयन में बिना किसी विरोध के उपस्थित हुए थे अतः अब वे तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को चुनौती नहीं दे सकते । तद्नुसार, रिट याचिका को खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

---

[1] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 477 में प्रकाशित ।

6. हमने पक्षकारों के विद्वान काउंसेल द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

7. इस मामले में प्रत्यर्थियों द्वारा तकनीकी सहायक के पद हेतु आवेदन आमंत्रित किए जाने के लिए तारीख 28 अप्रैल, 2015 को विज्ञापन जारी किया गया था । पूर्वोक्त पद 1975 के विनियमों द्वारा शासित है । इसमें महिलाओं के लिए आरक्षण का कोई व्यवस्था नहीं थी । याचियों ने इसके लिए बिना विरोध किए चयन में उपस्थित हुए और उन्होंने तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को चुनौती दी है । जब याची योग्यता स्थान प्राप्त नहीं कर सके, तो उन्होंने बाद में चुनौती दी । चयन या तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को चुनौती को एक ऐसे असफल अभ्यर्थी द्वारा मान्य नहीं ठहराया जा सकता जो उस चयन में बिना किसी विरोध के उपस्थित हुआ हो । उच्चतम न्यायालय द्वारा **डी. सरोजाकुमारी** बनाम **आर. हेलन थीलाकॉम और अन्य**[1] के मामले में दिए गए निर्णय के कारण है । इस मामले को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि वह अभ्यर्थी जो प्रक्रिया या नियम का विरोध किए बिना चयन में उपस्थित हुआ, उस चयन के बाद में था असफल रहने पर चुनौती नहीं दे सकता, अतः मात्र असफल रहने के आधार पर ही रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है ।

इस मामले में अंतर्वलित विवाद्यक के अन्य पहलू भी हैं । इस पूर्व ऐसा **रीना चौधरी** बनाम **जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड और एक अन्य**[2] वाले मामले फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रकाश में है । पूर्ववर्ती रिट याचिका भी पूर्ववर्ती चयन में आरक्षण का दावा किए जाने के लिए फाइल की गई थी, जिसके लिए एक विज्ञापन वर्ष 2011 में जारी किया था । आरक्षण का दावा स्वीकार नहीं किया गया था । **रीना चौधरी** (उपर्युक्त) वाले मामले में पारित निर्णय के सुसंगत पैरा को वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

---

[1] (2017) 9 एस. सी. सी. 478 में प्रकाशित ।

[2] रिट याचिका संख्या 2373/2012 तारीख निर्णय 19 मई, 2015.

"आरक्षण, जैसाकि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, कोई मौलिक या विधिक अधिकार नहीं है । आरक्षण हेतु उपबंध करने की शक्ति मात्र समर्थकारी शक्ति होती है । आरक्षण का दावा केवल ऐसी स्थिति में किया जा सकता है जहां उसके लिए उपबंध किए गए हों । यह स्पष्ट पूर्ण रूप से नीतिगत मामला है । उपरोक्त ब्यौरे के कारणों के आधार जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड में तकनीकी सहायक के पद के आरक्षण का उपबंध किसी भी प्रकार से मनमाना या अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता । जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड का अस्तित्व सरकार से भिन्न है । इसलिए नियोजन के मामलों में विभिन्न पदों पर आरक्षण की सरकार की नीति जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड में नियोजन की ईप्सा करने वाले याचियों को कोई लाभ नहीं दिया जा सकता चूंकि उसने तकनीकी सहायक के पद पर महिला अभ्यर्थियों को आरक्षण के विवाद्यक पर उक्त नीति को अंगीकृत नहीं किया है । यह कहा जाना बिल्कुल गलत नहीं है कि तकनीकी सहायकों के पदों पर महिला अभ्यर्थियों का चयन गुणागुण का चयन किया जा सकता है और किया जाता है । प्रतियोगिता से अपवर्जन अन्य मामला है और यदि महिला अभ्यर्थियों को तकनीकी सहायकों के पदों पर पुरुष अभ्यर्थियों के साथ योग्यता के आधार पर वर्जित किया जाता है तो यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के साथ कपट होगा । इसलिए यह नहीं किया गया है । तर्क के आधार पर तकनीकी सहायकों के पदों पर महिला अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण के अधिकार का प्रवंचन नहीं दिया जा सकता । जैसाकि पूर्व में अभिनिर्धारित किया गया है, आरक्षण नीति का मामला है और यह मात्र समर्थकारी उपबंध है । किसी भी प्रकार के आरक्षण के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ रिट पोषणीय नहीं होती । इन परिस्थितयों में, वर्ष 2011 के विज्ञापन में, तकनीकी सहायक के पद पर भर्ती किए जाने के लिए जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड द्वारा महिला अभ्यर्थियों को कोई

आरक्षण प्रदान न किया जाना, याची को वाद कारण उपलब्ध नहीं करा सकता । किसी विधिक/मौलिक अधिकार का कोई अतिलंघन नहीं किया गया है । किसी कानूनी कर्तव्य के निर्वहन में कोई चूक स्थापित नहीं की गई है ।"

8. पूर्वोक्त निष्कर्ष को स्वयं याची संख्या 2 के मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किया गया था । आरक्षण का दावा अधिकारस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 16(2) के विपरीत नहीं किया जा सकता । अनुच्छेद 16(4) सरकार को केवल पिछड़ा वर्ग के नागरिकों को ही आरक्षण प्रदान करने की शक्ति प्रदान करता है । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित के आदेश को चुनौती के अभाव में पूर्ववर्ती रिट याचिका में पारित आदेश को अन्तिमता प्राप्त हो चुकी है । अब तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को चुनौती 1975 के विनियम के विनियम 4 (सी)(1), जिसके द्वारा महिलाओं को आरक्षण वापस ले लिया गया, के प्रतिस्थापन के विरुद्ध दी गई है । यह स्वयमेव याची संख्या 2 के मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष के प्रकाश में प्रदान नहीं किया जा सकता है ।

9. वर्तमान रिट याचिका में अन्तर्वलित विवाद्यक का एक अन्य पहलू भी है और इस पर पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए विचार किए जाने की आवश्यकता है । संविधान का अनुच्छेद 16 लोक नियोजन में अवसर की समानता प्रदान करता है और वर्तमान मामले के संदर्भ में इसको नीचे उद्धृत किया गया है :-

**"अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन के मामले में अवसर की समता**

(1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर के समता होगी ।

(2) राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म स्थान, निवास या

इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा ।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात संसद् को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन वाले किसी वर्ग या वर्गों के पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबंध में ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है ।

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य के पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियां या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

(4क) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं पर्याप्त नहीं हैं, राज्य के अधीन सेवाओं में किसी वर्ग या वर्गों के पदों पर, पारिणामिक ज्येष्ठता सहित, प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी ।

(5) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म को मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो ।"

10. संविधान का अनुच्छेद 16(1) नियोजन या नियुक्ति से संबंधित मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान किए जाने के लिए उपबंध करता है । अनुच्छेद 16(2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी आधार पर विभेद के विरुद्ध रोक लगाता है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(2) को दृष्टिगत

करते हुए, लोक नियोजन में लिंग के आधार कोई विभेद नहीं किया जा सकता है । यह बताना अपेक्षित नहीं है कि कोई भी संवैधानिक उपबंध के अतिक्रमण में कार्य नहीं कर सकता । आरक्षण प्रदान किए जाने का एक अपवाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अधीन दिया गया है और यह पिछड़ा वर्ग के नागरिकों के पक्ष में है ।

11. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, किसी महिला के पक्ष में आरक्षण का दावा भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(2) और (4) द्वारा वर्जित है । महिलाओं को आरक्षण लोक नियोजन में लिंग के आधार पर विभेद का कारण होगा । यह अनुज्ञेय नहीं है ।

12. इस प्रक्रम पर, भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 को निर्दिष्ट किया जाना सुसंगत होगा जो धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद को प्रतिषेध करता है । संविधान के अनुच्छेद 15(3) यह उपबंध करता है कि राज्य सरकार महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से रोक नहीं लगाएगी । यहां पर यह दलील दी जा सकती है कि राज्य संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अनुसरण में महिलाओं के पक्ष में आरक्षण प्रदान किए जाने के संबंध में नीति बना सकता है । पूर्वोक्त दलील लोक नियोजन को शासित करने वाले संविधान के अनुच्छेद 16 की अनभिज्ञता में ही दी जा सकती है, और इस प्रकार यह दलील इस अनुच्छेद के विरोध में किसी अन्य अनुच्छेद द्वारा शासित नहीं हो सकती है । संविधान का अनुच्छेद 16(2) लिंग के आधार पर विभेद को वर्जित करता है इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 15(3) इसके विरोध में नहीं पढ़ा जा सकता । हम पूर्वोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, महिला अभ्यर्थियों के पक्ष में आरक्षण प्रदान किए जाने के निर्देश नहीं दे सकते और उसके लिए तारीख 29 मार्च, 2012 के आदेश को अपास्त करते हैं । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **इंदिरा साहनी और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया । उक्त निर्णय के सुसंगत पैरा 118 को निर्दिष्ट किया गया है और उसको वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है :-

"118. यहां पर महिलाओं के लिए आरक्षण के बारे में कुछ शब्दों का जोड़ा जाना आवश्यक है । अनुच्छेद 16 के खंड (2) लिंग के आधार पर सेवाओं में आरक्षण को वर्जिज करता है । अनुच्छेद 15(3) इस स्थिति से कुछ नहीं कर सकता चूंकि राज्य के अधीन सेवाओं में सभी आरक्षण अनुच्छेद 16 के अधीन ही प्रदान किए जा सकते हैं । महिलाएं पिछड़े और अगड़े, दोनों ही वर्गों से आती हैं । यदि अनुच्छेद 16(1) के अधीन एक वर्ग के रूप में महिलाओं को आरक्षण प्रदान करता है तो फिर वही असमान स्थिति उत्पन्न होगी, अगड़े वर्गों से संबंधित महिलाएं सभी पदों पर काबिज हो जाएंगी और संबंधित महिलाओं को कोई भी पद नहीं मिलेगा । इसका परिणाम अगड़े वर्गों को अप्रत्यक्षतः कानूनी रूप से आरक्षण प्रदान किया जाना ही होगा जो अनुच्छेद 16 के किसी उपबंध के अधीन अनुज्ञेय है । फिर भी, इसमें कोई संदेह नहीं है कि महिलाएं समाज का असुरक्षित वर्ग हैं, चाहे वे समाज के किसी भी वर्ग से संबंधित हों । वे पुरुषों के मुकाबले अपने ही सामाजिक वर्ग में अत्यधिक अलाभकर स्थिति में हैं । इसलिए उनके लिए उस आधार पर आरक्षण पूर्णतया न्यायोचित होगा, यदि उन्हें व्यक्तियों की अन्य कोटियों की भांति अपने-अपने वर्ग के ही कोटि में रखा जाए, जैसाकि व्याख्या ऊपर की गई है । व्यक्तियों की अन्य श्रेणियों के लिए भी । यदि ऐसा किया जाता है तो इसमें महिलाओं के लिए कोई विशेष कोटा रखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं होगी और अनुच्छेद 16 के अधीन आरक्षण की जो भी प्रतिशत-सीमा को बढ़ाए जाने की आवश्यकता नहीं होगी ।"

13. उपरोक्त उद्धृत पैरा में उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि संविधान के अनुच्छेद 16(2) लिंग के आधार पर सेवा में आरक्षण को वर्जित करता है । इस निष्कर्ष को यह भी अभिलिखित किया गया है कि इस स्थिति में

संविधान का अनुच्छेद 15(3) कोई सहायता नहीं कर सकता चूंकि राज्य के अधीन सेवा में सभी आरक्षण केवल अनुच्छेद 16 के अधीन ही किए जा सकते हैं, अतः लोक नियोजन में संविधान के अनुच्छेद 15 का प्रयोग स्वीकार नहीं किया गया है । संविधान के अनुच्छेद 16(1) के संदर्भ में आगे कोई मताभिव्यक्ति नहीं की गई है । यदि इस मामले में संविधान के सामंजस्य में कोई निष्कर्ष निकाला जाता है तो महिलाओं के लिए आरक्षण अनुच्छेद 16(2) का अतिलंघन होगा । तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की है कि महिलाएं समाज की असुरक्षित भाग हैं । वे अपने स्वयं के सामाजिक वर्ग में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अलाभकर स्थिति में हैं । इस आधार पर आरक्षण पूर्णतया न्यायोचित होगा ।

14. हमारे द्वारा विचार किए जाने के लिए प्रश्न यह है कि क्या आरक्षण पूर्वोक्त अवलोकन के आधार पर दिया जा सकता है । हमारी राय में, इसे आरक्षण के लिए असुरक्षित वर्ग की नई कोटि सृजित किए जाने के प्रयोजनार्थ संविधान का संशोधन करके ऐसा किया जा सकता है और इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 16(2) का संशोधन किया जाना चाहिए । इसके अभाव में, महिलाओं के लिए आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 16(2) का अतिलंघन होगा जिसके लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट निबंधनों में निष्कर्ष अभिलिखित किया जा चुका है जिसका अनदेखा नहीं किया जा सकता है । उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, जब तक संविधान पूर्वोक्त उद्धृत पैरा में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार संशोधन नहीं कर दिया जाता, कोई भी दावा या महिलाओं के पक्ष में आरक्षण संविधान के अनुच्छेद 16(2) द्वारा बाधित होगा । उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 16(4) द्वारा इसको अच्छादित नहीं किया है चूंकि महिलाओं के लाभकर और अलाभकर वर्ग विद्यमान हैं, अतः यह संविधान के अनुच्छेद 16 के विरुद्ध होगा । उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, रिट याचिका में की गई प्रार्थना मंजूर नहीं की जा सकती ।

15. तथापि, हम प्रत्यर्थियों से सहमत नहीं हैं कि महिलाएं प्रश्नगत पद पर कार्य नहीं कर सकती, अतः पूर्वोक्त तर्क स्वीकार्य नहीं है चूंकि महिलाएं तकनीकी कार्य भी कर सकती हैं किन्तु ऊपर की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, हम याचियों द्वारा की गई प्रार्थना को स्वीकार करने में असमर्थ हैं ।

16. तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है और लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./अवि.

---

**(2019) 1 सि. नि. प. 418** **राजस्थान**

## अब्दुल अजीज और अन्य

बनाम

## जाक़िर मोहम्मद और अन्य

तारीख 22 अक्तूबर, 2018

**न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी**

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 14, नियम 5 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 7, नियम 11 और परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 54] – जहां लिखित कथन फाइल किया जा चुका है और विवाद्यक विरचित किए जा चुके हैं और परिसीमा के विवाद्यक पर पक्षों के मध्य विवाद है और प्रतिवादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 14, नियम 5 के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र में भी परिसीमा के ही बिंदु पर विवाद है, तो न्यायालय को सर्वप्रथम आदेश 14, नियम 5 के प्रार्थना पत्र का निस्तारण करना चाहिए ।**

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि टौंक के जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थी-वादी द्वारा फाइल किए गए 2014 के मूलवाद संख्या 136 में तारीख 18 मई, 2017 में निर्णय और डिक्री पारित क जिसके अंतर्गत

अपीलार्थी-वादी का वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन परिसीमा के बिंदु पर खारिज कर दिया गया । इस निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी-वादी द्वारा यह अपील प्रस्तुत की गई । अपील खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – इस न्यायालय की राय में जहां वादपत्र का जवाबदावा प्रस्तुत होकर विवाद्यक विरचित कर दिए गए हैं एवं मियाद के बिन्दु पर पक्षों के मध्य विवाद हो तथा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत पार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 14, नियम 12 सिविल प्रक्रिया संहिता में भी मियाद के बिन्दु पर विवाद्यक बनाए जाने की प्रार्थना की गई है, वहां न्यायालय को सर्वप्रथम प्रार्थना पत्र अंतर्गत ओदश 14, नियम 5 सिविल प्रक्रिया संहिता को निस्तारित करना चाहिए एवं अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मियाद के बिन्दु का विवाद्यक बनाए जाने की स्थिति में यह भी तय किया जाना है कि मियाद बिन्दु विधि व साक्ष्य/तथ्य का मिश्रित प्रश्न है या नहीं तथा मिश्रित प्रश्न होने की स्थिति में उस बिन्दु पर पक्षों की साक्ष्य लेखबद्ध की जाकर मियाद बिन्दु पर निष्कर्ष दिया जाना चाहिए । चूंकि अपीलार्थी-वादी ने वादपत्र के चरण संख्या 9 में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को जिस दिनांक को नोटिस दिया जाना बताया है, उसकी पुष्टि साक्ष्य की रोशनी में की जाकर मियाद अधिनियम के सेक्शन 54 के तहत नोटिस में अंकित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मियाद का बिन्दु तय किया जाना आवश्यक है । लेकिन नोटिस के प्रमाणीकरण के क्रम में उक्त अधिनियम के सेक्शन 54 की रोशनी में साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है या नहीं, इस क्रम में अधीनस्थ न्यायालय को निर्णय लेना है । उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत यह अपील आंशिक तौर पर स्वीकार की जाती है और अधीनस्थ न्यायालय का आक्षेपित आदेश/निर्णय तारीख 18 मई, 2017 अपास्त किया जाता है तथा अधीनस्थ न्यायालय को निदेशित किया जाता है कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 14, नियम 5 सिविल प्रक्रिया संहिता पर दोनों पक्षों को सुनकर प्रार्थना पत्र को गुणागण पर निस्तारित करे एवं मियाद का विवाद्यक बनने की स्थिति में तत्पश्चात् नियमानुसार प्रकरण में सुनवाई कर मूल प्रकरण का शीघ्रातिशीघ्र निस्तारण करे । (पैरा 12, 13 और 14)

## निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] II-2017 (1) सी. सी. सी. 508 :
**बिरेन्द्र यादव** बनाम **मदन मित्रा और अन्य ;** 2

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 363 :
**सी. नटराजन** बनाम **आसीम भाई और अन्य ;** 2

[2006] (2006) 8 एस. सी. सी. 658 :
**बलसारिया कन्स्ट्रक्शन** बनाम **हनुमान सेवा ट्रस्ट और अन्य ।** 2

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 589.**

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** श्री मोहित गुप्ता, अधिवक्ता

**प्रत्यर्थी की ओर से** श्री मोहम्मद अनीस, अधिवक्ता

**न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी** – अधीनस्थ न्यायालय, जिला न्यायाधीश टौंक, द्वारा दीवानी मूल वाद संख्या-136/2014 में पारित निर्णय एवं डिक्री तारीख 18 मई, 2017, जिसके तहत अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत वाद आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत मियाद बाहर होने से खारिज किया गया है, के विरुद्ध अपीलार्थी-वादी की ओर से यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. बहस सुनी गई । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपीलार्थी-वादी का वाद आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत मात्र मियाद के बिन्दु पर अधीनस्थ न्यायालय में धारा 5 मियाद अधिनियम का प्रार्थना पत्र पोषणीय नहीं मानते हुए खारिज किया गया है, जो विधि के प्रावधानो के प्रतिकूल है । उनका यह भी कथन रहा कि आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत मात्र वादपत्र में उल्लेखित अभिवचनों को ध्यान

में रखकर आदेश पारित करना होता है तथा अभिवचनों की सत्यता व प्रमाणिकता को साक्ष्य के आधार पर ही तय किया जा सकता है, लेकिन अधीनस्थ न्यायालय ने अभिवचनों में उल्लिखित तथ्यों के आधार पर वाद को मियाद बाहर मानते हुए एवं जो समय फौजदारी कार्यवाही में व्यतीत हुआ है, उसे अविश्वनीय एवं असंगत करार देते हुए, सेक्शन 54 मियाद अधिनियम के प्रावधानों को नजरअंदाज करते हुए प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता स्वीकार कर वादी का वाद खारिज किया गया है । अतः अपील स्वीकार कर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई । अपने तर्क समर्थन में उनके द्वारा निम्न न्याय दृष्टांतों का अवलंब लिया गया ।

1. **बलसारिया कन्स्ट्रक्शन** बनाम **हनुमान सेवा ट्रस्ट और अन्य**[1]

2. **सी. नटराजन** बनाम **आसीम भाई और अन्य**[2]

3. **बिरेन्द्र यादव** बनाम **मदन मित्रा और अन्य**[3]

3. योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने उक्त तर्कों का विरोध करते हुए अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय विधिसम्मत होना बताकर अपील खारिज किए जाने का निवेदन किया ।

4. समस्त तथ्यों पर विचार किया गया । प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति, वादपत्र एवं आक्षेपित आदेश के अवलोकन से प्रकट होता है कि अपीलार्थी-वादी ने पक्षों के मध्य हुए मौखिक करार तारीख 15 फरवरी, 2008 की विनिर्दिष्ट अनुपालन के क्रम में वाद प्रस्तुत किया तथा वादपत्र के चरण संख्या 9 में वादकारण को स्पष्ट करते हुए प्रतिवादी को दिए गए नोटिस तारीख 28 जुलाई, 2013 एवं 31 जुलाई, 2013 की पालना नहीं किए जाने के पश्चात् वाद प्रस्तुत करना उल्लेखित किया । वादपत्र के अभिवचनों के अनुसार वादी की ओर से इकरारनामा की सम्पूर्ण राशि 1,60,000/- रुपए की अदायगी किया जाना

---

[1] (2006) 5 एस. सी. सी. 658.

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 363.

[3] II-2017(1) सी. सी. सी. 508.

भी प्रकट किया है ।

5. बहस के दौरान योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत न्याय दृष्टांतों में मूल रूप से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि वादपत्र में उल्लिखित अभिवचनों की रोशनी में मियाद का बिन्दु विधि एवं साक्ष्य का मिश्रित प्रश्न होने की स्थिति में, मियाद के बिन्दु पर दोनों पक्षों की साक्ष्य को लेखबद्ध किए जाने के पश्चात् तय किया जाना चाहिए ।

6. उक्त कानूनी स्थिति में हम ससम्मान सहमत हैं । वर्तमान मामले में अधीनस्थ न्यायालय के आक्षेपित निर्णय का अवलोकन करने पर प्रकट होता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने मौखिक करार तारीख 15 फरवरी, 2008 से वाद प्रस्तुति दिनांक को मद्देनजर रखते हुए वाद को मियाद बाहर माना है एवं धारा 5 मियाद अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होने का उल्लेख करते हुए वाद को प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत खारिज किया गया है ।

7. वर्तमान प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति से प्रकट होता है कि वादी की ओर से वाद प्रस्तुत होने के पश्चात्, प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्वारा जवाबदावा प्रस्तुत हो चुका था एवं अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक विरचित किए जाकर प्रकरण में साक्ष्य प्रारंभ हो चुकी थी । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से दो प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 7, नियम 11 सिविल प्रक्रिया संहिता एवं अंतर्गत आदेश 14, नियम 5 सिविल प्रक्रिया संहिता प्रस्तुत हुए हैं ।

8. अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत वादपत्र की चरण संख्या 9 में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को दिए गए नोटिस तारीख 28 जुलाई, 2013 एवं 31 जुलाई, 2013 के आधार पर वादकारण उत्पन्न होना बताकर नोटिस दिए जाने की तारीख से तीन वर्ष की अवधि में तारीख 27 अगस्त, 2013 को वाद प्रस्तुत होना बताया है ।

9. वादी प्रस्तुत करने हेतु निर्धारण अवधि के क्रम में मियाद अधिनियम, 1963 का सेक्शन 54 निम्न प्रकार है :-

> 54. किसी संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए - **तीन वर्ष** पालन के लिए नियत की गई तारीख या यदि ऐसी तारीख नियत

नहीं की गई है तो जब वादी का यह सूचना हो जाए कि पालन से इनकार कर दिया गया है ।

10. मियाद अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों के अवलोकन से प्रकट होता है कि जहां किसी करार की पालना किए जाने के क्रम में कोई निश्चित तारीख या समय निर्धारित किया गया हो, उससे तीन वर्ष की अवधि में या निश्चित अवधि निर्धारित नहीं होने की स्थिति में वादी को करार की पालना से इनकारी की जानकारी होने पर निर्धारित अवधि में वाद प्रस्तुत किया जा सकता है ।

11. ऐसी स्थिति में मियाद अधिनियम, 1963 के सेक्शन 54 के प्रावधानों के तहत अपीलार्थी-वादी का वाद अभिवचनों की रोशनी में एवं विशेष तौर पर वादपत्र के चरण संख्या 9 की रोशनी में वाद मियाद में है या नहीं, इस बिन्दु को साक्ष्य दर्ज होने के पश्चात ही तय किया जा सकता है । दूसरी ओर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 14, नियम 5 सिविल प्रक्रिया संहिता में भी मियाद के बिन्दु पर विवाद्यक बनाए जाने की प्रार्थना की गई है ।

12. इस न्यायालय की राय में जहां वादपत्र का जवाबदावा प्रस्तुत होकर विवाद्यक विरचित कर दिए गए हैं एवं मियाद के बिन्दु पर पक्षों के मध्य विवाद हो तथा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत पार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 14, नियम 12 सिविल प्रक्रिया संहिता में भी मियाद के बिन्दु पर विवाद्यक बनाए जाने की प्रार्थना की गई है, वहां न्यायालय को सर्वप्रथम प्रार्थना पत्र अंतर्गत ओदश 14, नियम 5 सिविल प्रक्रिया संहिता को निस्तारित करना चाहिए एवं अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मियाद के बिन्दु का विवाद्यक बनाए जाने की स्थिति में यह भी तय किया जाना है कि मियाद बिन्दु विधि व साक्ष्य/तथ्य का मिश्रित प्रश्न है या नहीं तथा मिश्रित प्रश्न होने की स्थिति में उस बिन्दु पर पक्षों की साक्ष्य लेखबद्ध की जाकर मियाद बिन्दु पर निष्कर्ष दिया जाना चाहिए ।

13. चूंकि अपीलार्थी-वादी ने वादपत्र के चरण संख्या 9 में प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को जिस दिनांक को नोटिस दिया जाना बताया है, उसकी पुष्टि साक्ष्य की रोशनी में की जाकर मियाद अधिनियम के सेक्शन 54 के तहत नोटिस में अंकित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मियाद का बिन्दु

तय किया जाना आवश्यक है । लेकिन नोटिस के प्रमाणीकरण के क्रम में उक्त अधिनियम के सेक्शन 54 की रोशनी में साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है या नहीं, इस क्रम में अधीनस्थ न्यायालय को निर्णय लेना है ।

14. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत यह अपील आंशिक तौर पर स्वीकार की जाती है और अधीनस्थ न्यायालय का आक्षेपित आदेश/निर्णय तारीख 18 मई, 2017 अपास्त किया जाता है तथा अधीनस्थ न्यायालय को निदेशित किया जाता है कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत प्रार्थना पत्र अंतर्गत आदेश 14, नियम 5 सिविल प्रक्रिया संहिता पर दोनों पक्षों को सुनकर प्रार्थना पत्र को गुणागण पर निस्तारित करे एवं मियाद का विवाद्यक बनने की स्थिति में तत्पश्चात् नियमानुसार प्रकरण में सुनवाई कर मूल प्रकरण का शीघ्रातिशीघ्र निस्तारण करे ।

15. कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि निर्णय की प्रति के साथ अधीनस्थ न्यायालय का अभिलेख अविलंब लौटाया जाए । दोनों पक्ष अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष तारीख 13 नवंबर, 2018 को उपस्थित रहें ।

16. यह आदेश/निर्णय आज तारीख 22 अक्तूबर, 2018 को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 348(i) के तहत भारत सरकार की अधिसूचना राजपत्र संख्या 1, तारीख 2 जनवरी, 1999 एवं राजस्थान राजपत्र तारीख 10 मार्च, 1971 के तहत हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्राधिकृत किए जाने के परिणामस्वरूप मूल निर्णय हिन्दी भाषा में लिखाया गया । राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के आदेश 397/3 अक्तूबर, 2018 के तहत अनुवादक से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करवाकर प्रमाणित प्रति भी जारी की जाए ।

अपील का निपटारा किया गया ।

महीं./अवि.

संसद् के अधिनियम

# संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890
# (1890 का अधिनियम संख्यांक 8)[1]

[21 मार्च, 1890]

**संरक्षक और प्रतिपाल्य से सम्बन्धित विधि का समेकन और संशोधन करने के लिए अधिनियम**

संरक्षक और प्रतिपाल्य से सम्बन्धित विधि का समेकन और संशोधन करना समीचीन है, अतः एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :–

## अध्याय 1
## प्रारम्भिक

1. **नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) यह अधिनियम संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार [2][जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय] सम्पूर्ण भारत पर है । [3]***; [4]*** ।

---

[1] यह अधिनियम 1963 के विनियम 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा दादरा और नगर हवेली पर, 1965 के विनियम 8 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा सम्पूर्ण लक्षद्वीप संघ राज्यक्षेत्र पर और अधिसूचना सं. का. आ. 644 (अ), तारीख 24-8-1984, भारत के राज्यपत्र, असाधारण, भाग 2, खंड 3 (ii) द्वारा (1-9-1984 से) सिक्किम पर विस्तारित किया गया ;

यह अधिनियम निम्नलिखित उपांतरणों के साथ 1968 के अधिनियम सं. 26 द्वारा पांडिचेरी पर विस्तारित किया गया –

धारा 1 में, उपधारा (2) के पश्चात् निम्नलिखित अन्तःस्थापित करें :–

"परन्तु इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई बात पांडिचेरी के संघ राज्यक्षेत्र के रेनोसाओं को लागू नहीं होगी ।"

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग ख राज्यों के सिवाय" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] भारतीय स्वतंत्रता (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेश अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा "ब्रिटिश बलुचिस्तान को सम्मिलित करते हुए" शब्द निरसित ।

[4] 1949 के अधिनियम सं. 40 की धारा 3 और अनुसूची 2 द्वारा "और" शब्द का लोप किया गया ।

(3) यह 1890 की जुलाई के प्रथम दिन को प्रवृत्त होगा ।

2. [**निरसन** ।] – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

3. **प्रतिपाल्य अधिकरण और चार्टरित उच्च न्यायालयों की अधिकारिता की व्यावृत्ति** – यह अधिनियम किसी भी राज्य के, [1][[2] [जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है,] किसी सक्षम विधान-मण्डल, प्राधिकारी या व्यक्ति] द्वारा किसी प्रतिपाल्य अधिकरण से सम्बन्धित एतद्पूर्व या एतद्पश्चात् पारित हर अधिनियमिति के अध्यधीन रहते हुए पढ़ा जाएगा, और इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि वह किसी प्रतिपाल्य अधिकरण की अधिकारिता या प्राधिकार पर प्रभाव डालती है अथवा उसे किसी प्रकार से अल्पीकृत करती है, अथवा उस शक्ति को, जो [3][उच्च न्यायालय [4]***] के पास है, ले लेती है ।

4. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई बात विरुद्ध न हो, –

(1) "अप्राप्तवय" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसके बारे में भारतीय प्राप्तवयता अधिनियम, 1875 (1875 का 9) के उपबन्धों के अधीन यह समझा जाता है कि वह प्राप्तवयता को नहीं पहुंचा है ;

(2) "संरक्षक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो अप्राप्तवय के शरीर की या उसकी सम्पत्ति की, या उसके शरीर और संपत्ति दोनों की देखरेख रखता है ;

(3) "प्रतिपाल्य" से ऐसा अप्राप्तवय अभिप्रेत है, जिसके शरीर

---

[1] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "सपरिषद् गवर्नर जनरल अथवा सपरिषद् गवर्नर या लेफ्टिनेंट द्वारा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग क राज्यों और भाग ग राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "विक्टोरिया स्टेट्यूट 24 और 25, अध्याय 104 (भारत में उच्च न्यायालय स्थापित करने के लिए अधिनियम) के अधीन कोई उच्च न्यायालय स्थापित" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग क राज्यों तथा भाग ग राज्यों में स्थापित" शब्दों का लोप किया गया ।

या सम्पत्ति, या दोनों के लिए कोई संरक्षक है ;

(4) "जिला न्यायालय" का वही अर्थ है, जो "डिस्ट्रिक्ट कोर्ट" को कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] में समनुदेशित है ; और मामूली आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय इसके अन्तर्गत आता है ;

[2][(5) " न्यायालय" से –

(क) वह जिला न्यायालय अभिप्रेत है जो किसी व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने वाले आदेश के लिए इस अधिनियम के अधीन आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता रखता है ; अथवा

(ख) जहां कि ऐसे किसी आवेदन के अनुसरण में कोई संरक्षक नियुक्त या घोषित किया जा चुका है, वहां –

(i) वह न्यायालय, जिसने या उस आफिसर का न्यायालय, जिसने संरक्षक को नियुक्त या घोषित किया है या जो इस अधिनियम के अधीन संरक्षक को नियुक्त या घोषित करने वाला समझा जाता है, अभिप्रेत है ; अथवा

(ii) प्रतिपाल्य के शरीर से सम्बन्धित किसी भी मामले में, वह जिला न्यायालय अभिप्रेत है, जिसकी अधिकारिता ऐसे स्थान पर है, जहां प्रतिपाल्य तत्समय मामूली तौर पर निवास करता है ; अथवा

(ग) धारा 4क के अधीन अन्तरित किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में उस आफिसर का न्यायालय अभिप्रेत है जिसे ऐसी कार्यवाही अन्तरित की गई है ;]

(6) "कलक्टर" से जिले के राजस्व प्रशासन का भारसाधक मुख्य आफिसर अभिप्रेत है, और ऐसा कोई भी आफिसर इसके अन्तर्गत

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

[2] 1926 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 द्वारा खण्ड (5) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

आता है, जिसे राज्य सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी भी स्थानीय क्षेत्र में, या व्यक्तियों के किसी वर्ग के बारे में, इस अधिनियम के समस्त या किन्हीं प्रयोजनों के लिए नाम से या पदेन कलक्टर होने के लिए नियुक्त करे ;

[1]* * * * ;

तथा

(8) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

[2][4क. **अधीनस्थ न्यायिक आफिसरों को अधिकारिता प्रदत्त करने की और ऐसे आफिसरों को कार्यवाहियां अन्तरित करने की शक्ति** – (1) उच्च न्यायालय आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी ऐसे अधिकारी को, जो जिला न्यायालय के अधीनस्थ है, अथवा जिला न्यायालय के न्यायाधीश को उसके अधीनस्थ किसी ऐसे आफिसर को यह शक्ति देने का प्राधिकार कि ऐसा आफिसर इस धारा के अधीन उसे अन्तरित इस अधिनियम के अधीन की किन्हीं भी कार्यवाहियों को निपटाए, साधारण या विशेष आदेश द्वारा दे सकेगा ।

(2) जिला न्यायालय का न्यायाधीश, इस अधिनियम के अधीन की किसी भी ऐसी कार्यवाही का, जो उसके न्यायालय में लंबित है, लिखित आदेश द्वारा किसी भी प्रक्रम में अन्तरण अपने अधीनस्थ किसी भी ऐसे आफिसर को जो उपधारा (1) के अधीन सशक्त किया गया है उसे निपटाने के लिए कर सकेगा ।

(3) जिला न्यायालय का न्यायाधीश अपने न्यायालय को या अपने अधीनस्थ किसी आफिसर को, जो उपधारा (1) के अधीन सशक्त किया गया है, इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही को, जो ऐसे आफिसर को जो ऐसे किसी अन्य आफिसर के न्यायालय में लम्बित है, किसी भी प्रक्रम में अन्तरित कर सकेगा ।

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा खण्ड (7) का लोप किया गया ।

[2] 1926 के अधिनियम सं. 4 की धारा 3 द्वारा अन्तःस्थापित ।

(4) जब कि किसी ऐसे मामले में, जिसमें कोई संरक्षक नियुक्त या घोषित किया जा चुका है, कोई कार्यवाहियां इस धारा के अधीन अन्तरित की जाती हैं तब जिला न्यायालय का न्यायाधीश लिखित आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि उस न्यायाधीश का न्यायालय अथवा वह आफिसर जिसे वे अन्तरित की गई हैं इस अधिनियम के सभी प्रयोजनों या उनमें से किन्हीं के लिए वह न्यायालय समझा जाएगा जिसने संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा की थी ।]

## अध्याय 2
## संरक्षकों की नियुक्ति और घोषणा

5. [**यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा की दशा में माता-पिता को नियुक्त करने की शक्ति** ।] – भाग ख राज्य (विधि) अधिनियम, 1951 (1951 का 3) की धारा 3 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

6. **अन्य दशाओं में नियुक्त करने की शक्ति की व्यावृत्ति** – अप्राप्तवय की दशा में [1]*** इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि वह उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों का संरक्षक नियुक्त करने की किसी ऐसी शक्ति को लेती है या अल्पीकृत करती है, जो उस विधि की दृष्टि से विधिमान्य है, जिसके वह अप्राप्तवय अध्यधीन है ।

7. **संरक्षकता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति** – (1) जहां कि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अप्राप्तवय का इसमें कल्याण है कि –

(क) उसके शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने वाला, अथवा

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षक घोषित करने वाला,

आदेश किया जाए, वहां न्यायालय तद्नुसार आदेश कर सकेगा ।

(2) इस धारा के अधीन दिए गए आदेश से यह विवक्षित होगा कि

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "जो यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा नहीं है" शब्दों का लोप किया गया है ।

कोई भी संरक्षक, जो विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, हटा दिया गया है ।

(3) जहां कि कोई संरक्षक विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने का इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक पूर्वोक्त नियुक्त या घोषित संरक्षक, की शक्तियां इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन परिविरत न हो गई हों ।

8. **आदेश के लिए आवेदन करने के हकदार व्यक्ति** – अन्तिम पूर्वगामी धारा के अधीन कोई आदेश निम्नलिखित के आवेदन पर किए जाने के सिवाय न किया जाएगा –

(क) अप्राप्तवय का संरक्षक बनने के लिए वांछा या होने का दावा करने वाला व्यक्ति, अथवा

(ख) अप्राप्तवय का कोई भी नातेदार या मित्र, अथवा

(ग) उस जिले या अन्य स्थानीय क्षेत्र का कलक्टर जिसके भीतर अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है या जिसमें उसकी सम्पत्ति है, अथवा

(घ) जिस वर्ग का अप्राप्तवय है, उसके बारे में प्राधिकार रखने वाला कलक्टर ।

9. **आवेदन ग्रहण करने की अधिकारिता रखने वाला न्यायालय** – (1) यदि आवेदन अप्राप्तवय के शरीर की संरक्षकता के बारे में है तो वह उस जिला न्यायालय में किया जाएगा जिसकी उस स्थान में अधिकारिता है जहां अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है ।

(2) यदि आवेदन अप्राप्तवय की सम्पत्ति की संरक्षकता के बारे में है तो वह या तो उस जिला न्यायालय में किया जा सकेगा, जिसकी उस स्थान में अधिकारिता है जहां अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है या उस जिला न्यायालय में किया जा सकेगा, जिसकी अधिकारिता ऐसे स्थान में है, जहां उसकी सम्पत्ति है ।

(3) यदि अप्राप्तवय की सम्पत्ति की संरक्षकता के बारे में आवेदन ऐसे जिला न्यायालय में किया गया है, जो उस स्थान में अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय से भिन्न है, जिसमें अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है, तो यदि उस न्यायालय की यह राय है कि उसका निपटारा अधिकारिता रखने वाले किसी अन्य जिला न्यायालय द्वारा अधिक न्यायसंगत तौर पर या सुविधा से किया जा सकेगा तो वह उस आवेदन को लौटा सकेगा ।

10. **आवेदन का प्ररूप** – (1) यदि आवेदन कलक्टर द्वारा नहीं किया जाता, तो वह उस प्रकार से, जो वादपत्र के हस्ताक्षर और सत्यापन के लिए कोड आफ सिविल प्रोसीजर,1882 (1882 का 14)[1] द्वारा विहित है, हस्ताक्षर और सत्यापित अर्जी द्वारा किया जाएगा जिसमें निम्नलिखित का कथन होगा जहां तक कि वे अभिनिश्चित किए जा सकें –

(क) अप्राप्तवय का नाम, लिंग, धर्म, जन्म तिथि और मामूली निवास-स्थान ;

(ख) जहां कि अप्राप्तवय नारी है, वहां यह कि वह विवाहिता है या नहीं, और यदि है, तो उसके पति का नाम और आयु ;

(ग) अप्राप्तवय की सम्पत्ति की, यदि कोई हो, प्रकृति, स्थिति और लगभग मूल्य ;

(घ) अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति की अभिरक्षा या कब्जा रखने वाले व्यक्ति का नाम और निवास-स्थान ;

(ङ) अप्राप्तवय के निकट नातेदार कौन हैं, और वे कहां निवास करते हैं ;

(च) यह कि अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति या दोनों का संरक्षक किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नियुक्त किया गया है या नहीं, जो उस विधि से, जिसके अध्यधीन अप्राप्तवय है, ऐसी नियुक्ति करने का हक रखता है या हक रखने का दावा करता है ;

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

(छ) यह कि अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति, या दोनों की संरक्षकता के बारे में आवेदन उस न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय से किसी समय किया गया है या नहीं, और यदि किया गया है, तो कब, और किस न्यायालय से किया गया और उसका परिणाम क्या हुआ ;

(ज) यह कि क्या आवेदन अप्राप्तवय के शरीर या उसकी सम्पत्ति या दोनों के संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा के लिए है ;

(झ) जहां कि आवेदन संरक्षक नियुक्त करने के लिए है, वहां प्रस्थापित संरक्षक की अर्हताएं ;

(ञ) जहां कि आवेदन किसी व्यक्ति को संरक्षक घोषित करने के लिए है, वहां वे आधार जिस पर वह व्यक्ति दावा करता है ;

(ट) वे हेतुक जिनसे प्रेरित होकर आवेदन किया गया है ; तथा

(ठ) ऐसी अन्य विशिष्टियां, यदि कोई हों, जैसी विहित की जाएं या जिनका कथन किया जाना आवेदन की प्रकृति आवश्यक बना देती है ।

(2) यदि आवेदन कलक्टर द्वारा किया जाता है, तो वह न्यायालय को संबोधित और डाक द्वारा ऐसे अन्य प्रकार से, जो सुविधाजनक पाया जाए, भेजे गए पत्र द्वारा होगा और उपधारा (1) में वर्णित विशिष्टियों का यावत्संभव कथन करेगा ।

(3) प्रस्थापित संरक्षक की कार्य करने के लिए रजामंदी की घोषणा आवेदन के साथ देनी होगी और उस घोषणा को उसे हस्ताक्षरित करना होगा और वह न्यूनतम दो साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित होगी ।

11. **आवेदन के ग्रहण किए जाने पर प्रक्रिया** – (1) यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि आवेदन पर कार्यवाही करने के लिए आधार है, तो वह उसकी सुनवाई के लिए दिन नियत करेगा, और आवेदन की और सुनवाई के लिए नियत तारीख की सूचना –

(क) की तामील कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] में निदेशित प्रकार से –

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) ।

(i) अप्राप्तवय की माता या पिता पर कराएगा, यदि वे किसी [1][ऐसे राज्य में निवास करते हों, जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है],

(ii) उस व्यक्ति पर, यदि कोई हो, कराएगा जो अर्जी में या पत्र में अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति की अभिरक्षा या कब्जा रखने वाले के तौर पर नामित है,

(iii) उस व्यक्ति पर कराएगा, जो आवेदन या पत्र में संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जाने के लिए प्रस्थापित है जब तक कि वह व्यक्ति स्वयं ही आवेदक न हो, तथा

(iv) अन्य किसी व्यक्ति पर कराएगा जिसे न्यायालय की राय में आवेदन की विशेष सूचना दी जानी चाहिए ; तथा

(ख) न्याय सदन के और अप्राप्तवय के निवास-स्थान के किसी सहजदृश्य भाग पर लगवाएगा, और अन्यथा ऐसे प्रकार से प्रकाशित कराएगा, जैसा उच्च न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए वह न्यायालय ठीक समझे ।

(2) राज्य सरकार, साधारण या विशेष आदेश द्वारा अपेक्षित कर सकेगी कि जब धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन की अर्जी में वर्णित सम्पत्ति का कोई भाग ऐसी भूमि है जिसका अधीक्षण प्रतिपाल्य अधिकरण ले सकता है ; तब न्यायालय उस कलक्टर पर, जिसके जिले में अप्राप्तवय मामूली तौर से निवास करता है, और हर कलक्टर पर, जिसके जिले में ऐसी भूमि का कोई भी प्रभाग स्थित है, पूर्वोक्त सूचना की भी तामील कराएगा, और कलक्टर ऐसे प्रकार से, जिसे वह ठीक समझे, उस सूचना को प्रकाशित कराएगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन तामील या प्रकाशित की गई किसी सूचना की तामील या प्रकाशन के लिए कोई प्रभार न्यायालय या कलक्टर द्वारा नहीं लिया जाएगा ।

12. **अप्राप्तवय के पेश किए जाने और शरीर तथा सम्पत्ति के अन्तरिम संरक्षण के लिए अन्तर्वर्ती आदेश देने की शक्ति** – (1) न्यायालय निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति, यदि कोई हो, जिसकी

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "किसी भाग क राज्य या किसी भाग ग राज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

अभिरक्षा में अप्राप्तवय है उसे ऐसे स्थान और समय पर और ऐसे व्यक्ति के समक्ष, जिसे उस न्यायालय ने नियुक्त किया है, पेश करे या कराए और न्यायालय अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति की अस्थायी अभिरक्षा और संरक्षण के लिए ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा वह उचित समझे ।

(2) यदि अप्राप्तवय ऐसी लड़की है, जिसे लोक समक्ष आने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए, तो उपधारा (1) के अधीन उसके पेश किए जाने के निदेश में यह अपेक्षा होगी कि वह देश की रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार पेश की जाए ।

(3) इस धारा की कोई भी बात –

(क) किसी अप्राप्तवय लड़की को ऐसे व्यक्ति को, जो इस आधार पर कि वह उसका पति है उसका संरक्षक होने का दावा करता है, अस्थायी अभिरक्षा में रखने को न्यायालय को तब के सिवाय, प्राधिकृत न करेगी जब कि वह लड़की अपने माता-पिता की, यदि कोई हो, सम्मति से अभिरक्षा में पहले से ही है, अथवा

(ख) उस व्यक्ति को, जिसे अप्राप्तवय की सम्पत्ति की अस्थायी अभिरक्षा और संरक्षण न्यस्त है, प्राधिकृत न करेगी कि वह किसी व्यक्ति को, जो भी ऐसी सम्पत्ति पर कब्जा रखता है, विधि के सम्यक् अनुक्रम से अन्यथा बेकब्जा करे ।

13. **आदेश करने से पहले साक्ष्य की सुनवाई** – आवेदन की सुनवाई के लिए नियत दिन को, या तत्पश्चात् यथाशक्य शीघ्र न्यायालय वह साक्ष्य सुनेगा, जो आवेदन के समर्थन में या विरोध में दिया जाए ।

14. **विभिन्न न्यायालयों में साथ-साथ कार्यवाहियां** – (1) यदि अप्राप्तवय के संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा के लिए कार्यवाहियां एक से अधिक न्यायालयों में की जाती हैं तो उन न्यायालयों में से हर एक अन्य न्यायालय या न्यायालयों में की कार्यवाहियों से अवगत कराए जाने पर, अपने समक्ष की कार्यवाहियों को रोक देगा ।

(2) यदि वे दोनों या सभी न्यायालय एक ही उच्च न्यायालय के अधीनस्थ हैं, तो वे मामले की रिपोर्ट उस उच्च न्यायालय को करेंगे, और वह उच्च न्यायालय अवधारित करेगा कि इन न्यायालयों में से किसमें

अप्राप्तवय के संरक्षक की नियुक्तियों या घोषणा के बारे में कार्यवाहियां की जाएंगी ।

[1][(3) अन्य किसी दशा में, जिसमें उपधारा (1) के अधीन कार्यवाहियां रोकी जाती हैं, न्यायालय अपनी-अपनी राज्य सरकार को मामले की रिपोर्ट करेंगे और उससे मिले आदेशों से मार्गदर्शित होंगे ।]

15. **कई संरक्षकों की नियुक्ति या घोषणा** – (1) यदि उस विधि के अनुसार, जिसके अप्राप्तवय अध्यधीन है, उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों के लिए दो या अधिक संयुक्त संरक्षक हो सकते हैं, तो न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, उन्हें नियुक्त या घोषित कर सकेगा ।

[2]* * * *

(4) अप्राप्तवय के शरीर के लिए और सम्पत्ति के लिए पृथक्-पृथक् संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जा सकेंगे ।

(5) यदि अप्राप्तवय की कई सम्पत्तियां हैं, तो न्यायालय यदि वह ठीक समझे, उन सम्पत्तियों में से किसी एक या अधिक के लिए पृथक्-पृथक् संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा कर सकेगा ।

16. **न्यायालय की अधिकारिता से परे की सम्पत्ति के लिए संरक्षक की नियुक्ति या घोषणा** – यदि न्यायालय अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के परे स्थित किसी सम्पत्ति के लिए संरक्षक नियुक्त या घोषित करता है तो, जिस स्थान में सम्पत्ति स्थित है, वहां अधिकारिता रखने वाला न्यायालय संरक्षक नियुक्त या घोषित करने वाले आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि के पेश किए जाने पर उसे सम्यक् नियुक्त या घोषित संरक्षक के तौर पर प्रतिगृहीत करेगा और आदेश को प्रभावशील करेगा ।

17. **संरक्षक नियुक्त करने में न्यायालय द्वारा विचारणीय बातें** – (1) अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित करने में इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय उस विधि से संगत, जिसके

---

[1] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल उपधारा (3) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा उपधारा (2) और (3) का लोप किया गया ।

अप्राप्तवय अध्यधीन है, उस बात से मार्गदर्शित होगा, जो उन परिस्थितियों में अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्रतीत हो ।

(2) यह विचार करने में कि अप्राप्तवय के लिए क्या कल्याणकर होगा, न्यायालय अप्राप्तवय की आयु, लिंग और धर्म, प्रस्थापित, संरक्षक शील और सामर्थ्य तथा अप्राप्तवय से रक्त संबंध में उसकी निकटता, मृत जनक की इच्छाओं को, यदि कोई हों और अप्राप्तवय से या उसकी सम्पत्ति से प्रस्थापित संरक्षक के किसी वर्तमान या पूर्वतम संबंधों को ध्यान में रखेगा ।

(3) यदि अप्राप्तवय इतनी आयु का है कि वह बुद्धिमत्तापूर्ण अधिमान कर सकता है तो न्यायालय उस अधिमान पर विचार कर सकेगा ।

[1]* * * *

(5) न्यायालय किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध संरक्षक नियुक्त या घोषित नहीं करेगा ।

18. **कलक्टर के पद के आधार पर नियुक्ति या घोषणा** – जहां कि कलक्टर अपने पद के आधार पर अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति या दोनों का संरक्षक होने के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया जाता है, वहां उसकी नियुक्ति या घोषणा करने वाला आदेश वह पद तत्समय धारण करने वाले व्यक्ति को, यथास्थिति, अप्राप्तवय के शरीर या सम्पत्ति, या दोनों के बारे में अप्राप्तवय के संरक्षक के तौर पर कार्य करने को प्राधिकृत और अपेक्षित करने वाला समझा जाएगा ।

19. **कतिपय दशाओं में न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्त न किया जाना** – इस अध्याय की कोई भी बात न्यायालय को प्राधिकृत न करेगी कि वह ऐसे अप्राप्तवय की, जिसकी सम्पत्ति प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन है, सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त या घोषित करे, अथवा –

(क) उस अप्राप्तवय के, जो विवाहिता नारी है और जिसका पति न्यायालय की राय में उसके शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं,

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा उपधारा (4) का लोप किया गया ।

है, अथवा

[1][(ख) किसी विवाहिता नारी से भिन्न उस अप्राप्तवय के, जिसका पिता या माता जीवित है और न्यायालय की राय में अप्राप्तवय के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है ; अथवा]

(ग) उस अप्राप्तवय के, जिसकी सम्पत्ति उसके शरीर का संरक्षक नियुक्त करने के लिए सक्षम प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन है,

शरीर का संरक्षक नियुक्त या घोषित करे ।

## अध्याय 3
## संरक्षकों के कर्तव्य, अधिकार और दायित्व
### साधारण

20. **संरक्षक का प्रतिपाल्य से वैश्वासिक संबंध** – (1) संरक्षक का अपने प्रतिपाल्य से वैश्वासिक संबंध होता है और विल या अन्य लिखत द्वारा, यदि कोई हो, जिसमें वह नियुक्त किया गया है, या इस अधिनियम द्वारा, यथा उपबंधित के सिवाय, वह अपने पद से कोई लाभ नहीं उठाएगा ।

(2) अपने प्रतिपाल्य के प्रति संरक्षक के इस वैश्वासिक संबंध का विस्तार और प्रभाव संरक्षक द्वारा प्रतिपाल्य की सम्पत्ति के, और प्रतिपाल्य द्वारा संरक्षक की सम्पत्ति के ऐसे क्रयों पर होता है, जो प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता समाप्त होने के अव्यवहित या शीघ्र पश्चात् किए गए हैं, और साधारणतया उनके बीच तब किए गए सब संव्यवहारों पर होता है, जब संरक्षक का असर बना हुआ था या कुछ ही पहले तक बना रहा था ।

21. **संरक्षक के तौर पर कार्य करने की अप्राप्तवय की सामर्थ्य** – अप्राप्तवय, अपनी पत्नी या सन्तान के, या जहां कि वह अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब का कर्ता है वहां उस कुटुम्ब के दूसरे अप्राप्तवय सदस्य की पत्नी या सन्तान के संरक्षक के तौर पर कार्य करने के सिवाय किसी भी अप्राप्तवय के संरक्षक के तौर पर कार्य करने के लिए अक्षम है ।

---

[1] 2010 के अधिनियम सं. 30 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

22. **संरक्षक का पारिश्रमिक** – (1) न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक उस भत्ते का, यदि कोई हो, हकदार होगा, जिसे न्यायालय उसके कर्तव्यों के निष्पादन में उसकी सतर्कता और परिश्रम के लिए ठीक समझे ।

(2) जब कि सरकार का कोई आफिसर ऐसे आफिसर की हैसियत में, ऐसा संरक्षक होने के लिए नियुक्त या घोषित किया जाता है, तब प्रतिपाल्य की सम्पत्ति में से सरकार को ऐसी फीसें दी जाएंगी जैसी राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट करे ।

23. **संरक्षक के तौर पर कलक्टर पर नियंत्रण** – न्यायालय द्वारा अप्राप्तवय के शरीर या संपत्ति, या दोनों का संरक्षक होने के लिए नियुक्त या घोषित कलक्टर, अपने प्रतिपाल्य की संरक्षकता से सम्बन्धित, सब बातों में राज्य सरकार के या उस प्राधिकारी के, जैसा वह सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना[1] द्वारा इस निमित्त नियुक्त करे, नियंत्रण के अध्यधीन होगा ।

## शरीर का संरक्षक

24. **शरीर के संरक्षक के कर्तव्य** – प्रतिपाल्य के शरीर के संरक्षक पर प्रतिपाल्य की अभिरक्षा का भार है और उसे उसके संभाल, स्वास्थ्य और शिक्षा की और प्रतिपाल्य जिस विधि के अध्यधीन है उस द्वारा अपेक्षित अन्य बातों की ओर ध्यान देना होगा ।

25. **प्रतिपाल्य की अभिरक्षा का संरक्षक का हक** – (1) यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो, यदि न्यायालय इस राय का है कि प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकर होगा कि वह संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आए, तो वह उसके लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का प्रवर्तन कराने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक की अभिरक्षा में रखे जाने के लिए उसे परिदत्त करा सकेगा ।

---

[1] नियुक्ति करने वाले ऐसे प्राधिकारियों की बाबत अधिसूचनाओं के लिए जिनके नियंत्रण में अधिनियम के अधीन नियुक्त आयुक्त होंगे, देखिए विभिन्न स्थानीय नियम और आदेश ।

(2) प्रतिपाल्य की गिरफ्तारी के प्रयोजन से न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1882[1] (1882 का 10) की धारा 100 द्वारा प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकेगा ।

(3) ऐसे व्यक्ति के पास, जो उसका संरक्षक नहीं है, प्रतिपाल्य का अपने संरक्षक की इच्छा के विरुद्ध निवास, स्वतः संरक्षकता का पर्यवसान नहीं कर देता ।

26. **प्रतिपाल्य का अधिकारिता से हटाया जाना** – (1) जो व्यक्ति न्यायालय द्वारा शरीर का संरक्षक नियुक्त या घोषित है, जब तक वह कलक्टर न हो अथवा विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक न हो, वह उस न्यायालय की इजाजत के बिना जिसके द्वारा वह नियुक्त या घोषित किया गया था प्रतिपाल्य को उन प्रयोजनों के सिवाय, जो विहित किए जाएं, उस न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं से बाहर नहीं हटाएगा ।

(2) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन अनुदत्त इजाजत विशेष या साधारण हो सकेगी, और उसे अनुदत्त करने वाले आदेश द्वारा परिभाषित की जा सकेगी ।

## संपत्ति का संरक्षक

27. **सम्पत्ति के संरक्षक के कर्तव्य** – प्रतिपाल्य की सम्पत्ति का संरक्षक उस सम्पत्ति से ऐसी सतर्कता से बरतने के लिए आबद्ध है, जैसी से मामूली प्रज्ञा वाला व्यक्ति उससे बरतता यदि वह सम्पत्ति उसी की अपनी होती, और इस अध्याय के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि वह वे सब कार्य कर सकेगा जो उसे सम्पत्ति के आपन, संरक्षा या फायदे के लिए युक्तियुक्त और उचित हैं ।

28. **वसीयती संरक्षक की शक्तियां** – जहां कि संरक्षक विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त किया गया है वहां अपने प्रतिपाल्य की स्थावर सम्पत्ति को बंधक या भारित करने या विक्रय, दान, विनिमय द्वारा या अन्यथा अन्तरित करने की उसकी शक्ति, उस निर्बन्धन के अध्यधीन, जो लिखत द्वारा अधिरोपित किया गया हो, तब के सिवाय होगी जब कि वह

---

[1] अब देखिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) ।

इस अधिनियम के अधीन संरक्षक घोषित कर दिया गया है और उस घोषणा को करने वाले न्यायालय ने लिखित आदेश द्वारा वह स्थावर सम्पत्ति जो उस आदेश में विनिर्दिष्ट हो, आदेश द्वारा अनुज्ञात रीति से व्ययनित करने के लिए अनुज्ञा ऐसे निबंधन के होते हुए भी दे दी है ।

29. **न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किए गए सम्पत्ति के संरक्षक की शक्तियों की परिसीमा** – जहां कि कलक्टर से, या विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक से विभिन्न कोई व्यक्ति प्रतिपाल्य की सम्पत्ति का संरक्षक होने के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां वह न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना –

(क) अपने प्रतिपाल्य की स्थावर सम्पत्ति के किसी भी भाग को बंधक या भारित नहीं करेगा, या विक्रय, दान, विनिमय द्वारा, या अन्यथा अन्तरित नहीं करेगा, अथवा

(ख) उस सम्पत्ति के किसी भाग को पांच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए, या उस तारीख से, जिसको वह प्रतिपाल्य अप्राप्तवय न रहेगा, आगे एक वर्ष तक विस्तृत किसी अवधि के लिए पट्टे पर नहीं देगा ।

30. **धारा 28 या धारा 29 के उल्लंघन में किए गए अन्तरणों की शून्यकरणीयता** – संरक्षक द्वारा दोनों अन्तिम पूर्वगामी धाराओं में से किसी के उल्लंघन में स्थावर सम्पत्ति का व्ययन तद्द्वारा प्रभारित किसी भी अन्य व्यक्ति की प्रेरणा पर शून्यकरणीय है ।

31. **धारा 29 के अधीन अन्तरणों के लिए अनुज्ञा देने विषयक पद्धति** – (1) संरक्षक को धारा 29 में वर्णित कार्यों में से किसी को करने की अनुज्ञा न्यायालय आवश्यकता की दशा में देने के सिवाय या तब देने के सिवाय जबकि वह प्रतिपाल्य की सुव्यक्त भलाई के लिए हों, न देगा ।

(2) अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश में, यथास्थिति, आवश्यकता या भलाई का परिवर्णन होगा या उस सम्पत्ति का वर्णन होगा जिसके संबंध में अनुज्ञात कार्य किया जाता है, और ऐसी शर्तें, यदि कोई हों, विनिर्दिष्ट होंगी, जैसी न्यायालय अनुज्ञात से संलग्न करना ठीक समझे, और वह उस न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा स्वयं अपने हाथ से अभिलिखित, दिनांकित और हस्ताक्षरित किया जाएगा अथवा जब किसी कारण से वह हाथ से

आदेश को अभिलिखित करने से निवारित हो तब वह उसके बोलने के अनुसार लिखा जाएगा तथा उस द्वारा दिनांकित और हस्ताक्षरित किया जाएगा ।

(3) न्यायालय अनुज्ञा के साथ स्वविवेक में शर्तें संलग्न कर सकेगा जिनमें अन्य शर्तों के अतिरिक्त निम्नलिखित शर्तें भी हो सकेंगी, अर्थात् :–

(क) यह कि विक्रय न्यायालय की मंजूरी के बिना पूर्ण नहीं किया जाएगा ;

(ख) यह कि विक्रय उस आशयित विक्रय की ऐसी उद्घोषणा के पश्चात् जैसी उच्च न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अध्यधीन रहते हुए न्यायालय ने निर्दिष्ट की है, उस समय और स्थान पर, जो न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाएगा, लोक नीलामी द्वारा उस व्यक्ति को किया जाएगा जिसने न्यायालय के या न्यायालय द्वारा उस प्रयोजन के लिए विशेषतया नियुक्त व्यक्ति के समक्ष सबसे ऊंची बोली लगाई हो ;

(ग) यह कि पट्टा किसी प्रीमियम के प्रतिफल में न किया जाएगा या इतने वर्षों की अवधि के लिए और ऐसे भाटकों और प्रसंविदाओं के अध्यधीन किया जाएगा जो न्यायालय निर्दिष्ट करे ;

(घ) यह कि संरक्षक अनुज्ञात कार्य के सम्पूर्ण आगम या उनका कोई भाग न्यायालय से संवितरण किए जाने या विहित प्रतिभूतियों में न्यायालय द्वारा विनिहित किए जाने को अथवा अन्यथा ऐसे व्ययनित किए जाने को, जैसे न्यायालय निर्दिष्ट करे, न्यायालय में जमा करेगा ।

(4) संरक्षक को धारा 29 में वर्णित कार्य के करने की अनुज्ञा अनुदत्त करने से पहले न्यायालय अनुज्ञा देने के आवेदन की सूचना का प्रतिपाल्य के नातेदार या मित्र को दिलाया जाना कारित कर सकेगा जिसे न्यायालय की राय में उसकी सूचना मिलनी चाहिए, और आवेदन के विरोध में उपसंजात होने वाले किसी भी व्यक्ति को सुनेगा और उसका कथन अभिलिखित करेगा ।

32. **सम्पत्ति के संरक्षक की जो न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित**

**किया गया है, शक्तियों में फेरफार** – जहां कि प्रतिपाल्य की सम्पत्ति का संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है और ऐसा संरक्षक कलक्टर नहीं है, वहां न्यायालय प्रतिपाल्य की संपत्ति के बारे में उस संरक्षक की शक्तियों को आदेश द्वारा उस रीति से और उस विस्तार तक समय-समय पर परिभाषित, निर्बन्धित या विस्तारित कर सकेगा जिसे वह प्रतिपाल्य के फायदे के लिए और जिस विधि के अध्यधीन वह अप्राप्तवय है उस विधि से संगत समझे ।

33. **प्रतिपाल्य की संपत्ति के प्रबन्ध के लिए राय लेने को न्यायालय से आवेदन करने का ऐसे नियुक्त या घोषित संरक्षक का अधिकार** – (1) न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक उस न्यायालय से, जिसने उसे नियुक्त या घोषित किया है, अपने प्रतिपाल्य की संपत्ति के प्रबन्ध या प्रशासन विषयक किसी भी वर्तमान प्रश्न के संबंध में उस न्यायालय की राय, सलाह या निदेश के लिए अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का यह विचार है कि वह प्रश्न संक्षिप्ततः निपटाए जाने योग्य है, तो वह अर्जी की प्रतिलिपि की तामील आवेदन में हितबद्ध ऐसे व्यक्तियों पर, जिन्हें न्यायालय ठीक समझे, कराएगा तथा वे उसकी सुनवाई में हाजिर रह सकेंगे ।

(3) जो संरक्षक अर्जी में तथ्यों का सद्भावपूर्वक कथन करता है और न्यायालय द्वारा दी गई राय, सलाह या निदेश पर कार्य करता है, जहां तक कि उसका अपना उत्तरदायित्व है, यह समझा जाएगा कि उसने आवेदन की विषय-वस्तु के बारे में अपने उन कर्तव्यों का पालन कर दिया है जो संरक्षक के नाते उसके हैं ।

34. **संपत्ति के उस संरक्षक की बाध्यताएं जो न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है** – जहां कि प्रतिपाल्य की संपत्ति का संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, और ऐसा संरक्षक कलक्टर नहीं है, वहां वह, –

(क) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, तो तत्समय न्यायाधीश के फायदे के लिए प्रवृत्त बन्धपत्र, प्रतिभुओं सहित या रहित जैसा विहित किया जाए, न्यायालय के न्यायाधीश को यथाशक्य निकटतम विहित प्ररूप में देगा, जिसमें यह वचनबन्ध

होगा कि प्रतिपाल्य की संपत्ति की बाबत जो कुछ उसे प्राप्त हो, उसका सम्यक् तौर पर लेखा-जोखा देगा ;

(ख) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, प्रतिपाल्य की स्थावर संपत्ति का विवरण, ऐसे धन और ऐसी अन्य जंगम संपत्ति का विवरण, जिसे उसने प्रतिपाल्य की ओर से विवरण के परिदान की तारीख तक प्राप्त किया है, और प्रतिपाल्य को या प्रतिपाल्य द्वारा उस तारीख को शोध्य ऋणों का विवरण, न्यायालय द्वारा उसकी नियुक्ति या घोषणा की तारीख से छह मास के भीतर या इतने अन्य समय के भीतर, जितना न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किया जाए, न्यायालय को परिदत्त कर देगा ;

(ग) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, अपने लेखाओं को न्यायालय में ऐसे समय पर और ऐसे प्ररूप में, जैसा न्यायालय समय-समय पर निर्दिष्ट करे, प्रदर्शित करेगा ;

(घ) यदि उससे न्यायालय द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, उन लेखाओं में अपने द्वारा शोध्य बाकी या, उसका उतना भाग, जितना न्यायालय निर्दिष्ट करे, न्यायालय में उस समय जमा कर देगा, जिसे न्यायालय निर्दिष्ट करे ; तथा

(ङ) प्रतिपाल्य और ऐसे व्यक्तियों के, जो उस पर आश्रित हों, भरण-पोषण, शिक्षा और अभिवर्धन के लिए, तथा उन गृह कर्मों के अनुष्ठान के लिए जिनमें प्रतिपाल्य या उन व्यक्तियों में से कोई एक पक्षकार है, प्रतिपाल्य की संपत्ति की आय का उतना प्रभाग जितना न्यायालय समय-समय पर निर्दिष्ट करे, और उस दशा में, जब कि न्यायालय ऐसा निर्दिष्ट करे, तो संपूर्ण संपत्ति या उसका कोई भाग उपयोजित करेगा ।

[1][34क. **लेखाओं की संपरीक्षा करने के लिए पारिश्रमिक अधिनिर्णीत करने की शक्ति** – जब कि प्रतिपाल्य की संपत्ति के संरक्षक द्वारा लेखा धारा 34 के खंड (ग) के अधीन की गई अपेक्षा के अनुसरण में या अन्यथा प्रदर्शित किए जाएं, तब न्यायालय लेखाओं की संपरीक्षा करने के

---

[1] 1929 के अधिनियम सं. 17 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

लिए एक व्यक्ति को नियुक्त कर सकेगा और निदेश दे सकेगा कि उस काम के लिए पारिश्रमिक संपत्ति की आय में से दिया जाए ।]

35. **संरक्षक के विरुद्ध वाद, जहां कि प्रशासन बंधपत्र लिया गया था** – जहां कि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक ने यह बंधपत्र दिया है कि उसे प्रतिपाल्य की संपत्ति की बाबत जो कुछ प्राप्त होगा, वह उसका सम्यक् तौर पर लेखा-जोखा देगा, वहां न्यायालय अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर, और अपना यह समाधान हो जाने पर कि बंधपत्र वचनबंध का पालन नहीं किया गया है और प्रतिभूति के बारे में ऐसे निबन्धनों पर, अथवा यह उपबंध करके कि प्राप्त होने वाले सब धन न्यायालय में जमा कर दिए जाएं या अन्यथा, जैसे न्यायालय ठीक समझे, वह बंधपत्र किसी उचित व्यक्ति को समनुदेशित कर सकेगा, जो तदुपरि उस बंधपत्र के आधार पर स्वयं अपने नाम में ऐसे वाद लाने का हकदार होगा मानो वह बंधपत्र न्यायालय ने न्यायाधीश के बजाय आरम्भत: उसी को दिया गया था और प्रतिपाल्य के न्यासी की हैसियत में वह उसके, किसी भंग की बाबत उस पर वसूली करने का हकदार होगा ।

36. **संरक्षक के विरुद्ध वाद, जहां कि प्रशासन बंधपत्र नहीं लिया गया था** – (1) जहां कि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक ने यथापूर्वोक्त बंधपत्र नहीं दिया है वहां कोई भी व्यक्ति प्रतिपाल्य की संपत्ति की बाबत संरक्षक को हुई प्राप्ति के लिए वाद न्यायालय की इजाजत से वादमित्र के तौर पर संरक्षक के विरुद्ध या उस दशा में जिसमें उसकी मृत्यु हो चुकी हो, उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता के दौरान किसी समय संस्थित कर सकेगा और वाद में ऐसी रकम, जो यथास्थिति, संरक्षक या उसके प्रतिनिधि द्वारा देय पाई जाए प्रतिपाल्य के न्यासी के रूप में वसूल कर सकेगा ।

(2) जहां तक उपधारा (1) के उपबंध संरक्षक के विरुद्ध वाद से संबंधित हैं, वहां तक वे कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] के इस अधिनियम के द्वारा यथासंशोधित धारा 440 के उपबंधों के अध्यधीन रहेंगे ।

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. 5) की प्रथम अनुसूची में आदेश 32, नियम 1 और 4(2) ।

37. **संरक्षक का न्यासी के तौर पर साधारण दायित्व** – पूर्वगामी अन्तिम दो धाराओं में से किसी धारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्रतिपाल्य को या उसके प्रतिनिधि को संरक्षक या उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध किसी ऐसे उपचार से वंचित करती है जो इन दोनों धाराओं में तो अभिव्यक्त तौर पर उपबंधित नहीं है किन्तु किसी भी अन्य हिताधिकारी या उसके प्रतिनिधि को अपने न्यासी या उसके प्रतिनिधि के विरुद्ध प्राप्त हों ।

**संरक्षकता का पर्यवसान**

38. **संयुक्त संरक्षकों के बीच उत्तरजीविताधिकार** – दो या अधिक संयुक्त संरक्षकों में से एक की मृत्यु पर संरक्षकता उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों में तब तक बनी रहती है, जब तक न्यायालय द्वारा अतिरिक्त नियुक्ति नहीं कर दी जाती ।

39. **संरक्षक का हटाया जाना** – न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक को, या विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक को न्यायालय किसी हितबद्ध व्यक्ति के आवेदन पर या स्वप्रेरणा से, निम्नलिखित हेतुकों में से किसी या किन्हीं के लिए, अर्थात् :–

(क) अपने न्यास के दुरुपयोग के लिए,

(ख) अपने न्यास के कर्तव्यों के पालन में निरन्तर असफलता के लिए,

(ग) अपने न्यास के कर्तव्यों के पालन में असमर्थता के लिए,

(घ) अपने प्रतिपाल्य से बुरे बर्ताव, या उसकी उचित देखरेख करने में उपेक्षा के लिए,

(ङ) उस अधिनियम के किसी उपबंध या न्यायालय के किसी आदेश की धृष्टतापूर्ण अवहेलना के लिए,

(च) ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्धि के लिए जिसमें न्यायालय की राय में शील की ऐसी त्रुटि विवक्षित है, जिसे वह अपने प्रतिपाल्य का संरक्षक रहने के अयोग्य हो जाता है,

(छ) ऐसा हित रखने के लिए जो उसके कर्तव्यों के निष्ठापूर्वक पालन के प्रतिकूल है,

(ज) न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर निवास करना बन्द कर देने के लिए,

(झ) संपत्ति का संरक्षक होने की दशा में शोध-अक्षमता या दिवाले के लिए,

(ञ) जिस विधि के अध्यधीन अप्राप्तवय है, उसके अधीन संरक्षक की संरक्षकता के समाप्त हो जाने या समाप्त होने के कारण, हटा सकेगा :

परन्तु विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक चाहे वह इस अधिनियम के अधीन घोषित किया गया हो, या नहीं –

(क) खंड (छ) में वर्णित हेतुक के लिए तब के सिवाय हटाया न जाएगा जब कि उसकी नियुक्ति करने वाले व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् प्रतिकूल हित प्रोद्भूत हुआ हो या वह दर्शित कर दिया गया हो कि उस व्यक्ति ने प्रतिकूल हित की अनभिज्ञता में वह नियुक्ति की थी और बनाए रखी थी ; अथवा

(ख) खंड (ज) में वर्णित हेतुक के लिए तब के सिवाय हटाया न जाएगा जब कि ऐसा संरक्षक ऐसे निवास करने लगा हो, जिससे न्यायालय की राय में उस संरक्षक के लिए यह साध्य नहीं रह गया है कि वह संरक्षक के कर्तव्यों का निर्वहन कर सके ।

40. **संरक्षक का उन्मोचन** – (1) यदि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक अपना पद त्यागना चाहे, तो वह उन्मोचित किए जाने के लिए न्यायालय से आवेदन कर सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदन के लिए पर्याप्त कारण है, तो वह उसे उन्मोचित करेगा और यदि आवेदन करने वाला संरक्षक कलक्टर है, और राज्य सरकार उसके उन्मोचित किए जाने के लिए आवेदन करने का अनुमोदन करती है, तो न्यायालय हर दशा में उसे उन्मोचित करेगा ।

41. **संरक्षक के प्राधिकार का अन्त हो जाना** – (1) शरीर के संरक्षक की शक्तियों का अन्त –

(क) उसकी मृत्यु, उसके हटाए जाने या उसके उन्मोचन से ;

(ख) प्रतिपाल्य के शरीर का अधीक्षण प्रतिपाल्य अधिकरण द्वारा संभाल लिए जाने से ;

(ग) प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता के अन्त हो जाने से ;

(घ) नारी प्रतिपाल्य की दशा में उसका ऐसे पति से विवाह हो जाने से, जो उसके शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है या यदि संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है तो, ऐसे पति से, जो न्यायालय की राय में ऐसे अयोग्य नहीं है, विवाह हो जाने से ; अथवा

(ङ) ऐसे प्रतिपाल्य की दशा में जिसका पिता प्रतिपाल्य के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य था, पिता के ऐसा न रहने से या, यदि पिता, न्यायालय द्वारा ऐसे अयोग्य समझा गया था, तो न्यायालय की राय में उसके ऐसा न रहने से, हो जाता है ।

(2) संपत्ति के संरक्षक की शक्तियों का अन्त –

(क) उसकी मृत्यु, उसके हटाए जाने या उसके उन्मोचन से ;

(ख) प्रतिपाल्य की संपत्ति का अधीक्षण प्रतिपाल्य अधिकरण द्वारा संभाल लिए जाने से ; अथवा

(ग) प्रतिपाल्य की अप्राप्तवयता के अन्त हो जाने से ;

हो जाता है ।

(3) जब कि संरक्षक की शक्तियों का किसी हेतुकवश अन्त हो जाता है तब न्यायालय उससे या, यदि वह मर चुका हो तो, उसके प्रतिनिधि से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह प्रतिपाल्य की संपत्ति, जो उसके अपने कब्जे या नियंत्रण में है, अथवा प्रतिपाल्य की भूतपूर्व या वर्तमान संपत्ति से संबद्ध कोई लेखा, जो उसके अपने कब्जे या नियंत्रण में है, ऐसे परिदत्त कर दे जैसे न्यायालय निर्दिष्ट करे ।

(4) जब कि वह न्यायालय द्वारा अपेक्षित तौर पर संपत्ति या लेखाओं का परिदान कर चुका हो तब न्यायालय उस कपट के बारे में के सिवाय जिसके तत्पश्चात् पता चले यह घोषित कर सकेगा कि वह अपने दायित्वों से उन्मोचित कर दिया गया है ।

42. **मृत, उन्मोचित या हटाए गए संरक्षक के उत्तरवर्ती की नियुक्ति** – जब कि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक उन्मोचित कर दिया गया है, या उस विधि के अधीन, जिसके प्रतिपाल्य अध्यधीन है, कार्य करने का हकदार नहीं रह जाता या जब कि कोई ऐसा संरक्षक या विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त संरक्षक हटा दिया जाता है या मर जाता है, तब यदि प्रतिपाल्य तब भी अप्राप्तवय हो तो न्यायालय स्वप्रेरणा से, या अध्याय 2 के अधीन आवेदन पर, यथास्थिति, अप्राप्तवय के शरीर या संपत्ति या दोनों का दूसरा संरक्षक नियुक्त या घोषित कर सकेगा ।

## अध्याय 4

## अनुपूरक उपबंध

43. **संरक्षकों के आचरण या कार्यवाहियों के विनियमन के लिए आदेश और उन आदेशों का प्रवर्तन कराना** – (1) न्यायालय किसी ऐसे संरक्षक के, जो न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, आचरण या कार्यवाहियों के विनियमन के लिए आदेश किसी हितबद्ध व्यक्ति के आवेदन पर, या स्वप्रेरणा से, कर सकेगा ।

(2) जहां कि प्रतिपाल्य के एक से अधिक संरक्षक हैं, और वे ऐसे प्रश्न पर, जो उसके कल्याण पर प्रभाव डालने वाला है, एकमत होने में असमर्थ है, वहां उनमें से कोई भी न्यायालय से उसके निदेश के लिए, आवेदन कर सकेगा, और न्यायालय मतभेदग्रस्त विषय के बारे में ऐसा आदेश कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे ।

(3) वहां के सिवाय, जहां कि यह प्रतीत होता है कि उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन आदेश करने का उद्देश्य विलम्ब होने से विफल हो जाएगा, न्यायालय यह आदेश करने के पहले, यथास्थिति, तदर्थ किए गए, आवेदन की, या वैसा आदेश करने के न्यायालय के आशय की सूचना, उपधारा (1) की दशा में, संरक्षक को या उपधारा (2) की दशा में संरक्षक को, जिसने आवेदन नहीं किया है, दिए जाने का निदेश देगा ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किए गए आदेश की अवज्ञा की दशा में उस आदेश का प्रवर्तन उसी रीति से, जो कोड आफ

सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] की धारा 492 या धारा 493 के अधीन अनुदत्त व्यादेश का प्रवर्तन कराने के लिए उपधारा (1) के अधीन की दशा में ऐसे कराया जा सकेगा, मानो प्रतिपाल्य वादी हो या संरक्षक प्रतिवादी हो और उपधारा (2) के अधीन की दशा में ऐसे कराया जा सकेगा मानो वह संरक्षक, जिसने आवेदन किया है, वादी हो और अन्य संरक्षक प्रतिवादी हो ।

(5) उपधारा (2) के अधीन की दशा के सिवाय, इस धारा की कोई भी बात कलक्टर को, जो कलक्टर होने के नाते संरक्षक है, लागू नहीं होगी ।

44. **अधिकारिता में से प्रतिपाल्य के हटाए जाने की शास्ति** – यदि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक, न्यायालय को प्रतिपाल्य के बारे में अपने प्राधिकार का प्रयोग करने से निवारित करने के प्रयोजन से या तत्परिणाम सहित न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं में से प्रतिपाल्य को धारा 26 के उपबंधों का उल्लंघन करके हटा लेगा तो वह न्यायालय के आदेश द्वारा एक हजार रुपए से अनधिक जुर्माने से, या ऐसी अवधि के लिए, जो छह मास तक की ही हो सकेगी, सिविल जेल में कारावास से दंडनीय होगा ।

45. **धृष्टता के लिए शास्ति** – (1) निम्नलिखित दशाओं में, अर्थात् :–

(क) यदि अप्राप्तवय की अभिरक्षा रखने वाला व्यक्ति धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन निदेश के अनुपालन में उसे पेश करने या कराने में या धारा 25 की उपधारा (1) के अधीन के आदेश के अनुपालन में अप्राप्तवय को उसके संरक्षक की अभिरक्षा में लौटने के लिए विवश करने का अपना पूरा प्रयास करने में असफल रहेगा ; अथवा

(ख) यदि न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक धारा 34 के खंड (ख) के द्वारा या अधीन अनुज्ञात समय के भीतर,

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. 5) की प्रथम अनुसूची में आदेश 39, नियम 1 और 2 ।

न्यायालय को उस उपखंड के अधीन अपेक्षित विवरण परिदान करने में या उस धारा के खंड (ग) के अधीन की अपेक्षा के अनुपालन में लेखाओं का प्रदर्शन करने में, या उन लेखाओं मद्धे उस द्वारा शोध्य बाकी उस धारा के खंड (घ) के अधीन की अपेक्षा के अनुपालन में न्यायालय में जमा करने में असफल रहेगा ; अथवा

(ग) यदि कोई व्यक्ति, जो ऐसे व्यक्ति का संरक्षक या प्रतिनिधि नहीं रह गया है, धारा 41 की उपधारा (3) के अधीन की अपेक्षा के अनुपालन में किसी संपत्ति या लेखाओं का परिदान करने में असफल रहेगा ;

तो, यथास्थिति, वह व्यक्ति, संरक्षक या प्रतिनिधि, न्यायालय के आदेश द्वारा एक सौ रुपए से अनधिक जुर्माने से, और अवज्ञा जारी रहने की दशा में पहले दिन के पश्चात् जितने दिन तक यह व्यतिक्रम बना रहता है, उतने हर एक दिन के लिए दस रुपए से अनधिक अतिरिक्त जुर्माने से, जो कुल मिलाकर पांच सौ रुपए से अधिक न होगा, दंडनीय होगा और सिविल जेल में तब तक निरुद्ध किए जाने के दायित्व के अधीन होगा, जब तक वह, यथास्थिति, अप्राप्तवय को पेश करने या कराने या उसे लौट आने को विवश करने, या विवरण परिदत्त करने, या लेखा प्रदर्शित करने देने, या बाकी देने, या संपत्ति या लेखाओं का परिदान करने का परिवचन न दे दे ।

(2) यदि वह व्यक्ति, जो उपधारा (1) के अधीन परिवचन देने पर विरोध से निर्मुक्त कर दिया गया है, न्यायालय द्वारा अनुज्ञात समय के अन्दर परिवचन पूरा करने में असफल रहेगा, तो न्यायालय उसकी गिरफ्तारी और सिविल जेल को उसका फिर से सुपुर्द किया जाना कारित कर सकेगा ।

46. **कलक्टर और अधीनस्थ न्यायालयों के द्वारा रिपोर्ट** – (1) न्यायालय कलक्टर से या अपने अधीनस्थ किसी अन्य न्यायालय से, इस अधिनियम के अधीन की किसी भी कार्यवाही में उद्भूत किसी भी बात पर रिपोर्ट मांग सकेगा और उस रिपोर्ट को साक्ष्य के तौर पर बरत सकेगा ।

(2) यथास्थिति, कलक्टर या अधीनस्थ न्यायालय का न्यायाधीश

रिपोर्ट तैयार करने के प्रयोजन के लिए ऐसी जांच करेगा, जैसी वह आवश्यक समझे, और साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए साक्षी को हाजिर होने को विवश करने की शक्ति का, जो न्यायालय को कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] द्वारा प्रदत्त है, प्रयोग जांच के प्रयोजनों के लिए कर सकेगा ।

47. **अपीलनीय आदेश** – ऐसे आदेश की अपील उच्च न्यायालय में होगी जो [2]*** न्यायालय ने, –

(क) संरक्षक नियुक्त या घोषित करने या नियुक्त या घोषित करने से इनकार करने की धारा 7 के अधीन किया है ; अथवा

(ख) आवेदन लौटाने को धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन किया है ; अथवा

(ग) प्रतिपाल्य को उसके संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आने के लिए आदेश करने या आदेश करने से इनकार करने का धारा 25 के अधीन किया है ; अथवा

(घ) न्यायालय की अधिकारिता की सीमाओं में से प्रतिपाल्य के हटाए जाने के लिए इजाजत देने से इनकार करने या उसके बारे में शर्तें अधिरोपित करने का धारा 26 के अधीन किया है ; अथवा

(ङ) धारा 28 या धारा 29 में निर्दिष्ट कार्य करने की संरक्षक को उस धारा के अधीन अनुज्ञा देने से इनकार करने का किया है ; अथवा

(च) संरक्षक की शक्तियों को परिभाषित, निर्बन्धित या विस्तारित करने की धारा 32 के अधीन किया है ; अथवा

(छ) संरक्षक को हटाने की धारा 39 के अधीन किया है ; अथवा

(ज) संरक्षक को उन्मोचित करने से इनकार करने का धारा 40 के अधीन किया है ; अथवा

(झ) संरक्षक के आचरण या कार्यवाहियों के विनियमन का या

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. 5) की धारा 115 ।

[2] 1926 के अधिनियम 4 की धारा 4 द्वारा "जिला" शब्द निरसित ।

संयुक्त संरक्षकों के बीच में मतभेदग्रस्त विषय को तय करने या आदेश का प्रवर्तन कराने का धारा 43 के अधीन किया है ; अथवा

(ञ) शास्ति अधिरोपित करने की धारा 44 या धारा 45 के अधीन किया है ।

48. **अन्य आदेशों की अन्तिमता** – अन्तिम पूर्वगामी धारा द्वारा और कोड आफ सिविल प्रोसीजर, 1882 (1882 का 14)[1] की धारा 622 द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय इस अधिनियम के अधीन किया गया आदेश अन्तिम होगा, और वाद द्वारा या अन्यथा प्रतिवादनीय न होगा ।

49. **खर्चे** – इस अधिनियम के अधीन की किसी कार्यवाही के खर्चे, जिनके अंतर्गत सिविल जेल संरक्षक या अन्य व्यक्ति के भरण-पोषण के खर्चे आते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अध्यधीन रहते हुए उस न्यायालय के विवेकाधीन होंगे जिसमें कार्यवाही की गई है ।

50. **उच्च न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति** – (1) नियम बनाने की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त, जो इस अधिनियम द्वारा अभिव्यक्त तौर पर या विवक्षित तौर पर प्रदत्त है, उच्च न्यायालय इस अधिनियम से संगत नियम निम्नलिखित के लिए समय-समय पर बना सकेगा –

(क) वे बातें, जिनके बारे में और वह समय जिस पर कलक्टर और अधीनस्थ न्यायालयों से रिपोर्ट मांगी जानी चाहिए ;

(ख) संरक्षकों को अनुदत्त किए जाने वाले भत्ते और उनसे अपेक्षित की जाने वाली प्रतिभूति और वे दशाएं, जिनमें ऐसे भत्ते अनुदत्त किए जाने चाहिएं ;

(ग) धारा 28 और 29 में निर्दिष्ट कार्यों को करने की अनुज्ञा के लिए संरक्षकों के आवेदनों के बारे में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ;

(घ) वे परिस्थितियां जिनमें वे अपेक्षाएं की जानी चाहिएं जैसी

---

[1] अब देखिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम सं. 5) की धारा 115 ।

धारा 34 के खंड (क), (ख), (ग) और (घ) में वर्णित हैं ;

(ङ) संरक्षकों द्वारा परिदत्त और प्रदर्शित विवरणों और लेखाओं का परिरक्षण ;

(च) उन विवरणों और लेखाओं का हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण ;

[1][(चच) धारा 34क के अधीन लेखाओं की संपरीक्षा और उन व्यक्तियों का वर्ग जो लेखाओं की संपरीक्षा के लिए नियुक्त किए जाने चाहिएं और पारिश्रमिक का मापमान जो उन्हें अनुदत्त किया जाना है ;]

(छ) प्रतिपाल्यों के धन की अभिरक्षा और उनके धन के लिए प्रतिभूतियां ;

(ज) वे प्रतिभूतियां, जिनमें प्रतिपाल्यों के धन विनिहित किए जा सकेंगे ;

(झ) उन प्रतिपाल्यों की शिक्षा, जिनके लिए न्यायालय द्वारा, ऐसे संरक्षक नियुक्त या घोषित कर दिए गए हैं जो कलक्टर नहीं हैं, तथा

(ञ) इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने में न्यायालयों का साधारणत: मार्गदर्शन ।

(2) उपधारा (1) खंड (क) और (झ) के अधीन के नियम उस समय तक प्रभावशील नहीं होंगे, जब तक वे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित न कर दिए गए हों, और न इस धारा के अधीन का कोई नियम उस समय तक प्रभावशील होगा, जब तक वह शासकीय राजपत्र में प्रकाशित न कर दिया गया हो ।

51. **न्यायालय द्वारा पहले ही नियुक्त संरक्षकों को अधिनियम का लागू होना** – इस अधिनियम द्वारा निरसित किसी अधिनियमिति के अधीन सिविल न्यायालय द्वारा नियुक्त, या उससे प्राप्त प्रशासन

---

[1] 1929 के अधिनियम सं. 17 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

प्रमाणपत्र धारण करने वाला संरक्षक, जैसा विहित किया जाए, उसके सिवाय इस अधिनियम के उपबन्धों और इसके अधीन बनाए गए नियमों के ऐसे अध्यधीन होगा मानो वह अध्याय 2 के अधीन न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया हो ।

52. [**इण्डियन मेजोरिटी ऐक्ट का संशोधन ।**] – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

53. [**कोड आफ सिविल प्रोसीजर के अध्याय 31 का संशोधन ।**] – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 156 तथा अनुसूची 5 द्वारा निरसित ।

अनुसूची – [निरसित अधिनियमितियां ।] – निरसन अधिनियम, 1938 (1938 का 1) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

Cover iii

## कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

| क्रम सं. | पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण) | पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में) | 7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में) | 8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में) | 15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में) |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989 | 30 | – | – | 8 |
| 2. | माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990 | 40 | – | – | 10 |
| 3. | वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993 | 108 | – | – | 27 |
| 4. | अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993 | 40 | – | – | 10 |
| 5. | अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996 | 115 | – | – | 29 |
| 6. | श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996 | 452 | – | – | 113 |
| 7. | संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998 | 275 | – | – | 69 |
| 8. | चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख -1999 | 293 | – | – | 74 |
| 9. | आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000 | 429 | – | – | 108 |
| 10. | भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000 | 225 | – | – | 57 |
| 11. | हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ -2001 | 425 | – | – | 106 |
| 12. | भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001 | 165 | – | – | 41 |
| 13. | प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001 | 200 | – | – | 50 |
| 14. | भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002 | 741 | – | – | 185 |
| 15. | विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002 | 311 | – | – | 78 |
| 16. | विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005 | 580 | – | 290 | – |
| 17. | मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006 | 120 | – | 60 | – |


**विधि साहित्य प्रकाशन**
**(विधायी विभाग)**
**विधि और न्याय मंत्रालय**
**भारत सरकार**
**भारतीय विधि संस्थान भवन,**
**भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**

Cover iv

पी एल डी (सी. डी)-3-2019
भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

## सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2100/-, ₹ 1300/- और ₹ 1300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

**विधि साहित्य प्रकाशन**
**(विधायी विभाग)**
**विधि और न्याय मंत्रालय**
**भारत सरकार**
**भारतीय विधि संस्थान भवन,**
**भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**
**दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105**

**विक्रेता :** 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in